धम्मपद
वर्ग 22 ~ 26
गाथा और कथा
संस्कारक : हृषीकेश शरण
VOL. 4

धम्मपद

वर्ग 22 ~ 26

गाथा और कथा

लेखक एवं प्रकाशकः
हृषीकेश शरण
इस्ट ऐंड अपार्टमेन्ट्स
ब्लॉक - VI, फ्लैट नं 103
मयूर विहार, फेज़ - I एक्सटेन्शन
दिल्ली - 110 096
मोबाईलः 9871212294
ई-मेलः hsharan@hotmail.com

संस्करणः
मई, **2010**

Printed for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415
Email: overseas@budaedu.org
Website:http://www.budaedu.org
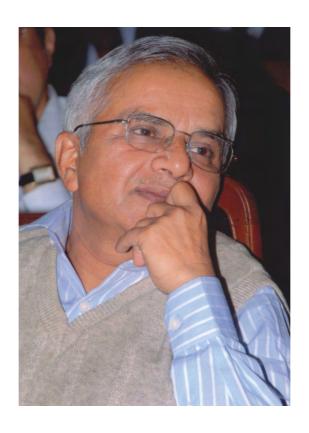
हृषीकेश शरण

जन्म बेतिया, पश्चिम चंपारण, बिहार। पटना विश्वविद्यालय से भौतिक विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री प्राप्त की। 1975 में भारतीय राजस्व सेवा (केन्द्रीय उत्पाद् शुल्क एवं सीमा शुल्क) में प्रवेश किया। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एल.एल.बी. की डिग्री प्राप्त की और ऑपरेशनल रिसर्च सोसाइटी आफ इण्डिया से ऑपरेशनल रिसर्च में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा प्राप्त किया। 1994 में कैलास मानसरोवर यात्रा के यात्री दल का नेतृत्व किया। इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय से हिन्दी में सृजनात्मक लेखन में डिप्लोमा प्राप्त किया। विभिन्न पदों पर आसीन रहने के बाद इन दिनों कोलकाता में मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क एवं सेवा कर के पद पर कार्यरत हैं।

पिछले 33 वर्षों से बुद्ध की शिक्षा से जुड़े हुए हैं। कालेज के दिनों से ही थियोसोफिकल सोसाइटी के सदस्य हैं। बुद्ध के जीवन एवं शिक्षा, होलिस्टिक मैनेजमेन्ट एवं अन्य विषयों पर संपूर्ण भारत में व्याख्यान देने के अलावा युगाण्डा, केन्या, तंजानिया, जाम्बिया, निदरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, सिंगापुर एवं भूटान में भी व्याख्यान दे चुके हैं।

2007 में सर एडविन ऑरनाल्ड की पुस्तक "लाइट आफ एशिया" का हिन्दी अनुवाद "जगदाराध्य तथागत" के रूप में किया। कैलाश मानसरोवर यात्रा पर संस्मरण भी लिखा है। संपूर्ण सचित्र धम्मपदः गाथा एवं कथा के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन महाबोधि सोसाइटी आफ इण्डिया के तत्वाधान में दिनांक 9 मई 2009 को बुद्ध पूर्णिमा के दिन किया जा चुका है।

समर्पण

दादाजी	-	स्व० राघव शरण जी
दादीजी	-	स्व० विंध्याचली देवी
पिताजी	-	स्व० शम्भू शरण जी
माताजी	-	स्व० शकुन्तला देवी

यह पुस्तक समर्पित है मेरे परम पूजनीय स्व० दादा एवं दादीजी और पूजनीय स्व० माता-पिताजी को, जिनकी सदाशयता एवं कुशल मार्ग दर्शन ने मेरे जीवन को प्रभावित और प्रेरित किया।

आमुख

थेरवादी परंपरा के अनुसार संसार से मुक्ति पाने की तीन धाराएं हैं :-

(1) सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति

(2) पच्येक बुद्ध की प्राप्ति

(3) अरहंत की प्राप्ति

उपर्युक्त तीन धाराओं में से सर्वज्ञ बुद्ध होना आसान नहीं है। यह सबसे कठिन है। दस पारमिता, दस उपपारमिता, दस परमत्तपारमिता, साराशंक्य, कल्प, लक्ष्य से भी अधिक संसार में दान, शील, नैशक्रम्य, प्रज्ञा आदि दस पारमिता पूरा करने के बाद ही सर्वज्ञ बुद्ध प्राप्ति संभव है। बुद्ध वंश की कथा के अनुसार बोधिसत्व ने महासागर में विद्यमान जल से भी ज्यादा रक्त दान दिया है। आसमान में विद्यमान तारों से अधिक नेत्रदान दिया है, महापृथ्वी की मिट्टी से ज्यादा मांस दान दिया है। इन कहानियों का उल्लेख बुद्ध वंश कथा एवं जातक कथाओं में मिलता है।

सर्वज्ञ बुद्ध की प्राप्ति के लिए संसार में अनेक योनियों में विविध रूपों में जन्म लेना पड़ता है। दुनिया के अनुभवों से अनेक छोटे-बड़े पुण्य प्राप्त करने होते हैं। ठीक इसी प्रकार छोटे-बड़े पापों के अनुभव भी प्राप्त करने होते हैं।

बुद्ध सर्वदा दूसरों का हित ध्यान में रख उपदेश दिया करते थे। एक बार एक प्रज्ञ पण्डित ने बुद्ध से पूछा, "शाक्य मुनि, मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है। यदि आप अनुमति दें तो मैं प्रश्न करूँ।" बुद्ध ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण, तुम मुझ से कोई भी प्रश्न पूछ सकते हो।" तदुपरान्त ब्राह्मण ने बुद्ध से प्रश्न किया, "आपके द्वारा धर्मदेशना देते समय आपके श्रीमुख से कमल की सुगंध निकलती है, इसके पीछे क्या कारण है ?" बुद्ध ने कहा, "ब्राह्मण, बुद्धत्व प्राप्ति के लिए संसार में व्याप्त छोटे-बड़े सभी पाप-पुण्य करना जरूरी है, केवल एक पाप को छोड़कर।" "यह पाप क्या है, तुम जानते हो ? " ब्राह्मण ने कहा, "हमें इसकी जानकारी नहीं है।" बुद्ध ने कहा, "यह पाप है झूठ या असत्य बोलना। झूठ या असत्य बोलना एक ऐसा पाप है जिसके गर्भ में सभी पाप छिपे हुए हैं। इस दुनियाँ में कोई भी व्यक्ति

कभी भी, किसी भी समय, किसी के साथ, कहीं भी छोटा-बड़ा पाप कर सकता है। बोधिसत्व में जन्म लेने के उपरान्त मैंने मुख से कभी भी झूठ नहीं बोला। इसीलिए उसी शक्ति से मेरे मुख से कमल की सुगंध निकलती है।"

कमल की सुगंध वाले बुद्ध वचनों को हम लोग बुद्ध-देशना कहते हैं। आगे चलकर इस बुद्ध-देशना को तीन भागों में बाँटा गयाः सुत्तपिटक, अभिधम्मपिटक और विनयपिटक - । "धम्मपद", सुत्तपिटक के 'खुद्धक निकाय' के अन्तर्गत आता है। 'खुद्दकनिकाय' के अंतर्गत 19 ग्रंथ हैं और इन ग्रंथों में एक ग्रंथ है- "धम्मपद"। "धम्मपद" के संगीतिकारक अरहंत भिक्षुओं ने इसे 26 वर्गों में बाँटा है। सनातन धर्म में गीता का जो महत्व है उतना ही महत्व बौद्ध धर्म में "धम्मपद"का है। "धम्मपद" का अनुवाद विश्व की लगभग सभी भाषाओं में उपलब्ध है। लेकिन लिखने में थोड़ी लज्जा महसूस हो रही है कि विभिन्न भाषा भाषियों वाले भारतवर्ष में 26 भाषाओं में आज भी "धम्मपद" उपलब्ध नहीं है। ग्रीक, चीनी भाषा के क्षेत्र बुद्ध के जन्म स्थान से बहुत दूर हैं फिर भी उन भाषाओं में "धम्मपद" उपलब्ध है।

श्री हृषीकेश शरण, मुख्य आयुक्त, केन्द्रीय उत्पाद् एवं सीमा शुल्क, कोलकाता, भारत सरकार के एक उच्च पदस्थ पदाधिकारी हैं। इतने बड़े पदाधिकारी होने के बावजूद धर्म के प्रति उनका लगाव अति प्रशंसनीय है। हमें पूरा विश्वास है कि श्री शरण द्वारा हिन्दी भाषा में संपादित सचित्र "धम्मपदः कथा और गाथा" का "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" धर्मप्रिय सभी पाठकों की मानसिक पीड़ा को दूर करने में एक महान सोपान के रूप में उपयोगी सिद्ध होगा।

महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया की तरफ से इस सद्धर्म कार्य के लिए श्री एच. के. शरण तथा उनके परिवार के सभी सदस्यों एवं इस काम के लिए तन-मन से जिस किसी ने भी मदद दी हो, उन सभी को त्रिरत्न से दीर्घायु, निरोगी, सर्व सम्पत्ति एवं सुखी जीवन हेतु प्रार्थना करता हूँ।

डॉ. डी. रेवत् थेरो
महासचिव
महाबोधि सोसायटी ऑफ इण्डिया

4ए,बंकिम चटर्जी स्ट्रीट,कोलकाता 73
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

प्रस्तावना

मई 2006. अभी तक मैंने जगदाराध्य बुद्ध की अमर कृति "धम्मपद" को कभी छुआ नहीं था, खोलने और पढ़ने की बात तो दूर की थी। कारण- लोग कहते थे कि पाली भाषा में होने के कारण बुद्ध की शिक्षा ग्रहण करना अति कठिन है। दूसरे, बौद्ध साहित्य पढ़ने से हतोत्साहित करते थे क्योंकि अधिकांश लोगों की सोच थी कि बौद्ध साहित्य पढ़ने वाला बुद्ध की तरह संन्यासी हो जायेगा; गृहस्थ धर्म नहीं निभा पायेगा। सलाह देने वाले डराते थे और सलाह ग्रहण करने वाला, जिनमें मैं भी शामिल था, डरता था कि कहीं गेरुआ वस्त्र तो धारण नहीं कर लूँगा? इस डर से कभी "धम्मपद" को छुआ तक नहीं था।

6-8 मई 2006. डॉ. राधा बर्नियर, अन्तर्राष्ट्रीय अध्यक्ष, थियोसोफिकल सोसायटी ने जूनागढ़, गुजरात में "धम्मपद" पर अध्ययन शिविर का संचालन किया। संयोगवश मुझे भी उसमें भाग लेने का मौका मिला। वहाँ जब मैंने प्रथम अध्याय "यमक वर्ग" में 'मन की महत्ता तथा बैलगाड़ी' और 'मनुष्य की छाया' का उदाहरण सुना तो "धम्मपद" के संदेश से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सका। "वैर का बदला वैर से नहीं चुकाया जा सकता; इसे प्रेम, दया, करुणा और मैत्री से ही समाप्त किया जा सकता है।" - यह गाथा तो हृदय के अंदर उतर गई। "धम्मपद" से लगाव हो गया।

उन दिनों श्री जितेन्द्र चतुर्वेदीजी, आयुक्त, जयपुर के सौजन्य से पता चला कि "धम्मपद" के प्रत्येक गाथा के पीछे एक कथा है। उनकी मदद से पूरी कथा को वेबसाइट से उतार लिया गया और कहानियों को पढ़ने में मुझे आनंद आने लगा। साथ ही मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि यह इतना प्रेरणादायक, सारगर्भित सद्साहित्य है; कहीं हिंदी का पाठक इससे वंचित तो नहीं है ? यह सोचकर मैंने हिंदी में अनुवाद करना प्रारंभ कर दिया। उद्देश्य था कि अपने व्याख्यानों में इन कथाओं तथा गाथाओं को उद्धृत कर सकूँ।

पदोन्नति पर जुलाई 2007 में जयपुर से कलकत्ता स्थानान्तरण हो गया। 2008 में "महाबोधि सोसाइटी" के महा सचिव, डॉ. रेवत् भन्ते जी से परिचय हुआ। उनसे पता चला कि हिंदी में भी "धम्मपद : गाथा और कथा" प्रकाशित हो चुकी है। मैंने प्रयत्न कर श्री ताराराामजी द्वारा लिखित पुस्तक की प्रति प्राप्त कर ली और जून 2008 में उसे पढ़ गया।

"धम्मपद" में मेरी रुचि जानकर महाबोधि सोसाइटी, सारनाथ के भिक्षु प्रभारी, डॉ. सुमेध भन्ते जी ने परम आदरणीय भिक्षु सारद महा थेरो जी द्वारा लिखित एवं प्रकाशित "ट्रैजरी ऑफ ट्रूथ", "सचित्र धम्मपद" की प्रति पढ़ने के लिए दी। इस पुस्तक में दाहिने पृष्ठ पर गाथा से सम्बन्धित कथा तथा बाँये पृष्ठ पर उससे सम्बन्धित चित्र, गाथा और उसका अर्थ दिया हुआ है। इस पुस्तक को भी मैं पढ़ता गया, पढ़ता गया। आनन्द ही आनन्द की अनुभूति हुई। अन्त में मन में आया कि क्यों न इसी प्रकार की एक पुस्तक हिन्दी में लिख दी जाए जिसमें कथावस्तु दाहिनी ओर हो और तस्वीरें बाईं ओर। भन्ते सारद जी से अनुमति ले तस्वीरों को प्रकाशित किया जाय। मैंने इस कार्य को दिसंबर 2008 में प्रारंभ किया और 31 मार्च 2009 तक संपन्न कर डाला।

इस बीच डॉ. रेवत् भन्ते जी से विचार-विमर्श हुआ कि क्यों न "बुद्ध पूर्णिमा" के पावन अवसर पर "धम्मपद" के दो अध्यायों "यमक वर्ग" और "बुद्ध वर्ग" का विमोचन किया जाए। उन्होंने इस दिशा में कदम उठाया और "बुद्ध पूर्णिमा 2009" के कार्यक्रम में इसे शामिल कर लिया। इस प्रकार ये दोनों पुस्तकें पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत हैं।

जनवरी - फरवरी 2009 में मुझे दो बार बोधगया जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और सिंहली भाषा के मूर्धन्य विद्वान भन्ते ज्ञानानंद जी से परिचय हुआ जिनकी जनसाधारण के लिए सिंहली भाषा में लिखी बौद्ध साहित्य की चार करोड़ से भी अधिक मूल्य की पुस्तकें बँट चुकी हैं। उन्होंने अपना बहुमूल्य समय देकर अनेक सुझाव दिए,

गाथाओं एवं अध्यायों का शीर्षक चुनने में मेरी मदद की। इससे मेरा काम आसान हो गया। उन्होंने श्रीलंका में अपने शिष्यों को निर्देश दिया कि वे आधुनिक समाज की पृष्ठभूमि में "धम्मपद" के प्रत्येक अध्याय का मुखपृष्ठ बनाकर भेजें। मैं श्री ज्ञानानंदजी एवं उनके शिष्य श्री ज्ञानविजयजी का हृदय से कृतज्ञ हूँ। इस लेखन की प्रक्रिया में डॉ. रेवत् भन्ते जी मेरे अग्रज एवं अभिभावक की तरह मुझे प्रोत्साहित करते रहे। अगर उनका मार्गदर्शन और प्रोत्साहन नहीं मिलता तो शायद यह कृति संभव नहीं हो पाती।

आज जब मैं विश्लेषण करता हूँ तो देखता हूँ कि बौद्ध-शिक्षा के प्रति समाज में बहुत सारी भ्रांतियाँ फैली हुई हैं। इसलिए भारतीय जनमानस बौद्ध-शिक्षा से लाभान्वित होने से वंचित रह गया है। वस्तुत: बौद्ध शिक्षा से अधिक व्यवहारिक और प्रासंगिक शिक्षा उपलब्ध नहीं है। पर यह कहना कि 'भोजन स्वादिष्ट है' पर्याप्त न होगा; अगर हम उस भोजन को ग्रहण नहीं करते हैं। बौद्ध साहित्य को मात्र पढ़ना और कहना कि 'यह अच्छा है' पर्याप्त नहीं है। इसका सही लाभ उसे ही मिल पायेगा जो उन उपदेशों को अपने जीवन में उतारेगा।

"धम्मपद" की गाथा 51 तथा 52 में इसे ही स्पष्ट करते हुए बुद्ध कहते हैं :-

गाथा 51: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलरहित होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण न करे।

गाथा 52: जैसे कोई पुष्प सुन्दर और वर्णयुक्त के साथ-साथ गंधयुक्त हो, वैसे ही अच्छी कही हुई बुद्ध वाणी भी फलदायी होती है यदि कोई उसके अनुसार आचरण करे।

आज समाज में सर्वत्र उच्छृंखलता फैली हुई है। उसे दूर करने के लिए बुद्ध के उपदेश से बढ़कर और कोई दवा नहीं है। **अत: समाज के प्रबुद्ध वर्ग को चाहिए कि वह उन संदेशों को आत्मसात करे तथा समाज के अंदर लगी नफरत की आग को बुझाने की चेष्टा करे।**

बुद्ध चरित्र इतना सुन्दर और विशाल है कि हर आदमी इससे प्रेरणा लेकर अपने जीवन को सुंदरमय बना सकता है, सँवार सकता है। हर पाठक के जीवन में इस पाठ्य सामग्री द्वारा विमल ज्योति जगे, मेरी यही प्रार्थना है।

मैं अपनी पत्नी श्रीमती मीनू शरण का कृतज्ञ हूँ, जिन्होंने धैर्य रखा तथा प्रोत्साहित किया जिससे मैं यह कार्य सम्पन्न कर पाया। बेटियाँ रूचि, प्रतीची एवं दामाद निशंक- के प्रति भी आभारी हूँ। उन्हें दैनिक जीवन में उतना समय न दे पाया जितना देना चाहिए था पर उन्होंने इस विषय पर कभी शिकायत नहीं की।

हृषीकेश शरण

(हृषीकेश शरण)

कोलकाता
बुद्ध पूर्णिमा, 9 मई 2009

नरक से बचने के उपाय
धम्मपद
निरय वर्ग
गाथा और कथा
संस्कारक : हृषीकेश शरण

नरक से बचने के उपाय

धम्मपद

निरय वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

निरय वर्ग

गाथा: अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमि चाह।
उभोपि ते पेच्च समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा परत्थ।।306।।

अर्थ: झूठ बोलने वाला आदमी नरक में जाता है। वह भी नरक में ही जाता है जो किसी पापकर्म करने के बाद भी पूछने पर कहता है 'मैंने नहीं किया।' ये दोनों ही प्रकार के नीच व्यक्ति, मरने के बाद, समान दुःख भोगने वाले हो जाते हैं।

झूठ बोलना : नरक की गारंटी
अति सुन्दर परिव्राजिका की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि के संदेश जम्बू द्वीप के कोने-कोने में पहुँच रहे थे। लोग भारी संख्या में उनके उपासक बन रहे थे, उपासक भिक्षु बन रहे थे। स्त्री-पुरुष सभी त्रिरत्न की शरण में जा रहे थे। स्वाभाविक था, बौद्ध भिक्षुओं और संघ का बहुत अधिक आदर-सत्कार होने लगा था। दूसरे मतावलम्बियों की संख्या घटती जा रही थी। उनकी दुकान बंद होने के कगार पर थीं। उनकी स्थिति वैसी ही हो गई थी जैसे सूर्य के उदय होने पर जुगनू की हो जाया करती है।

मरता क्या न करता ? मतान्ध लोगों ने एक परिव्राजिका को तैयार किया जो अति सुन्दर थी और उसकी मदद से एक षड्यंत्र रचा। वह प्रतिदिन संध्या बेला में गन्धकुटी की ओर जाती, रात में मतान्धों की कुटी में रह जाया करती थी और सुबह वह पुनः ऐसा दिखाती मानों वह गन्धकुटी से निकलकर वापस आ रही हो। लोग पूछते तो कहती, "रात्रि गुजारने गन्धकुटी जा रही हूँ। राजकुमार के साथ रात्रि बिताकर गंधकुटी से वापस आ रही हूँ" आदि-आदि। कुछ दिनों बाद उन मतान्धों ने भाड़े के कुछ हत्यारों को पैसा देकर उस स्त्री की हत्या करवा दी और उसके शव को जेतवन के पास फूलों के ढेर में छुपा दिया।

आगे वही किया, जो किया जाता है। उन मतान्धों ने चारों तरफ अफवाह फैला दी कि लगता है श्रमण गौतम और उनके शिष्यों ने स्त्री की हत्या कर दी है। उन्होंने फूलों के ढेर से शव को निकाला और राजा प्रसेनजित के पास ले गए। मतान्धों ने शहर में यह कहना शुरू कर दिया कि बुद्ध परिवार ने उस स्त्री की हत्या कर दी है।

बात शास्ता तक पहुँची। उन्होंने कहा, "सत्य स्वयं में इतना बलशाली होता है कि वह अपनी रक्षा कर सके। इसके विपरीत असत्य में वह बल कहाँ कि वह टिक सके ? सभी कुछ सात दिनों में ठीक हो जाएगा।" हुआ भी वही।

राजा ने हत्या की छानबीन का आदेश दिया। एक सप्ताह के अंदर ही षड्यंत्रकारी पकड़े गये। राजा के आदेश के अनुसार उन्हें पूरे नगर में घूम-घूम कर घोषणा करनी पड़ी, "हमने ही तथागत को बदनाम करने के लिए षड्यंत्र रचा था। हमने ही उस सुन्दर स्त्री की हत्या करवाई थी।"

गाथा: कासावकण्ठा बहवो, पापधम्मा असञ्ञता।
पापा पापेहि कम्मेहि, निरयं ते उपपज्जरे।। 307।।

अर्थ: बहुत सारे भिक्षु गेरुआ वस्त्र धारण किए हुए भी पापकर्मों में लीन रहते हैं। उनका अपनी इन्द्रियों पर और शरीर पर कोई संयम नहीं होता। ऐसे पापी, अपने पाप कर्मों के कारण, शरीर त्यागने के बाद सीधा नरक में ही जा गिरते हैं।

भिक्षु ! गेरुआ वस्त्र की गरिमा रखें
दुश्चरित्र का फल भोगने वालों की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

एक दिन स्थविर महामोग्गलान स्थविर लक्ष्मण के साथ गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतर रहे थे। मोग्गलान ने कुछ देखा और मुस्कुरा दिया। लक्ष्मण थेर ने इसका कारण पूछा तो महामोग्गलान ने कहा, "विहार चलकर शास्ता के सामने पूछना। मैं इसका उत्तर वहीं दूँगा।"

दोनों साथ-साथ चलते हुए वेणुवन पहुँचे। तब शास्ता की उपस्थिति में थेर लक्ष्मण ने अपना प्रश्न दोहराया। महामोग्गलान ने उत्तर देते हुए कहा, "हाँ, अब उत्तर देने का सही समय है।" उन्होंने शास्ता को संबोधित करते हुए कहा, "भन्ते ! गृद्धकूट पर्वत से नीचे उतरते समय मैंने पाँच भिक्षुओं को देखा। उनका शरीर आग में जल रहा था। चीवर, कायाबंध आदि भी जल रहे थे। वे सभी आकाश से जलते हुए पर्वत पर उतर रहे थे।

भिक्षुगण आपस में चर्चा करने लगे। प्रेतों के बारे में सुना था, गृहस्थों ने बुरे कर्म किए, कुकर्म किए और प्रेत योनि में जन्म लिया, यह भी सुना था पर भिक्षुगण को प्रेत योनि में जन्म लेते तथा इतना भयावह कष्ट सहते हुए न तो देखा था और न ही सुना था। अत: भिक्षुओं में जिज्ञासा थी कि शाक्य मुनि से आग्रह करें कि वे अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर बतावें कि किन कारणों से इनकी यह दुर्गति हुई थी।

तथागत ने स्पष्ट किया, "ये सभी भिक्षु काश्यप बुद्ध के काल में प्रव्रजित होकर प्रव्रज्या के अनुरूप कार्य नहीं करते थे। जो नहीं करना चाहिए उसे कर पापकर्म में लगे रहते थे। उन्होंने बताया कि उस समय किए गए पाप का फल आज झेलना पड़ रहा है।" यह सब बताने के बाद बुद्ध ने उस समय के कुछ दुश्चरित्र पापी भिक्षुओं के विषय में भी बताया और यह गाथा कही।
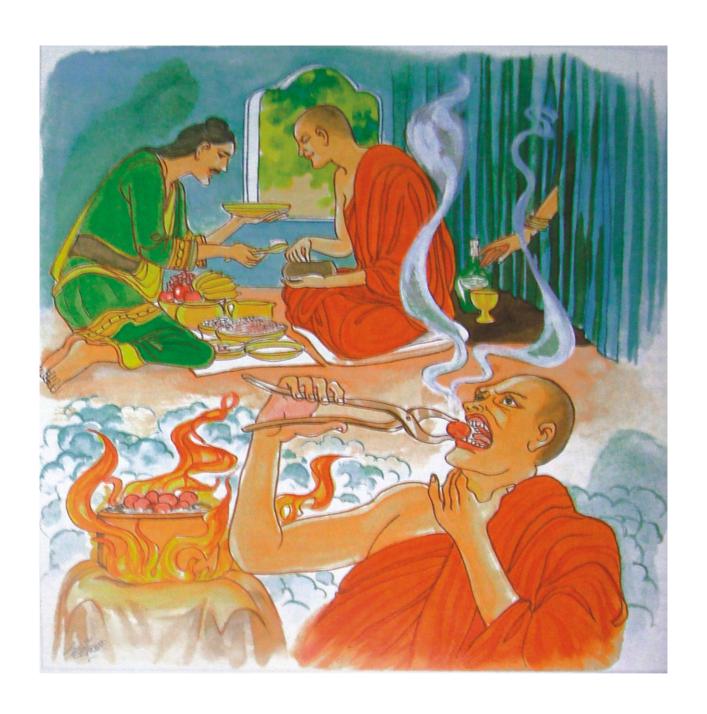
गाथा: सेय्यो अयोगुळो भुत्तो, ततो अग्गिसिखूपमो।
यञ्चे भुञ्जेय्य दुस्सीलो, रट्ठपिण्डमसञ्ञतो।। 308।।

अर्थ: दुराचारी तथा असंयमी पुरुष के लिए राष्ट्र का अन्न (लोगों के द्वारा दिये जा रहे दान में प्राप्त अन्न) खाने की तुलना में आग का लोहा खा लेना ज्यादा अच्छा है।

आग का गोला खाना श्रेयस्कर है
वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : महावन, वैशाली

एक समय शाक्य मुनि वैशाली के आम्रकुंजों में बने विहार में विराजमान थे। वहाँ भिन्न-भिन्न स्थानों से भिक्षुगण आते, शास्ता से मिलते, अपने अनुभव सुनाते, शास्ता की सलाह को गाँठ बाँधकर संजोते, शास्ता से अपनी शंका-समाधान कराते, अपनी कठिनाइयाँ बताते और उनका हल निकालते।

वर्षावास के बाद वग्गुमुदातीरवासी भिक्षुगण भी तथागत से आशीर्वाद प्राप्त करने पधारे। शास्ता तो दिव्यद्रष्टा थे। उन्हें मालूम था कि ये भिक्षुगण अनैतिक ढंग से भिक्षाटन किया करते थे। वे उन्हें सुधारना चाहते थे ताकि वे भविष्य के लिए बुरे कर्म का सृजन न करें। अत: उन्होंने उन भिक्षुओं से पूछा, "वर्षाकाल में आप लोगों ने अपने भिक्षादान के लिए क्या प्रबंध किया था ?" भिक्षुओं ने उत्तर दिया, "भन्ते ! कोई दिक्कत नहीं हुई। हमने उपासकों में यह धारणा बना दी कि हम सभी समाधिस्थ हैं। बस क्या था ? जनता की ओर से पूरा स्वागत-सत्कार होता रहा।" शाक्य मुनि ने वार्त्तालाप जारी रखते हुए पूछा, "क्या आप लोगों ने समाधि की अवस्था और मार्गफल पहले से ही प्राप्त कर रखा है ?" "क्या कहते हैं ? भन्ते ! वैसा तो हमने केवल भिक्षा प्राप्त करने के लिए किया था। हममें से कोई भी अभी तक समाधि की अवस्था तक नहीं पहुँचा है।"

तब तथागत ने उन्हें समझाया, "शील रहित माध्यम से दूसरों द्वारा दिये जाने वाले भोजन को 'मैं श्रमण हूँ' यह कहकर ग्रहण करने से अच्छा है कि आदमी अपने मुँह में आग का जलता हुआ गोला रख ले। कारण ? उस आग के गोले से उसका मुँह सिर्फ आज ही जलेगा, मात्र इसी जन्म में कष्ट होगा। लेकिन गलत ढंग से अन्न खाकर, गलत कर्म सृजित कर जन्म-जन्मान्तर तक नरक की अग्नि में उसे जलना होगा। समयानुरूप उन्होंने यह गाथा सुनाई।

गाथा: चत्तारि ठानानि नरो पमत्तो, आपज्जति परदारूपसेवी।
अपुञ्ञलाभं न निकामसेय्यं, निन्दं ततीयं निरयं चतुत्थं।। 309।।

अर्थ: पराई स्त्री के साथ व्यभिचार करने वाला चरित्रहीन, प्रमादी व्यक्ति चार फल प्राप्त करता है:-

1. उसे इस कर्म से अपुण्य अर्थात् पाप मिलता है।
2. उसकी नींद उड़ जाती है।
3. इस बुरे कर्म से उसकी सारे समाज में निंदा होती है।
4. इस पापकर्म से उसका मृत्यु पर्यन्त नरक में गिरना सुनिश्चित है।

पराई स्त्री का संग न करें

पराई स्त्री के संग का फल : खेम की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

यह कथा अनाथपिंडिक के भांजे खेमक (खेम) की है। वह कामदेव की प्रतिमूर्ति था। उसे देखते ही स्त्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट हो जातीं और उनका मन उससे काम संबंध स्थापित करने के लिए बेचैन हो उठता था। इस प्रकार औरतों का शरीर आसानी से प्राप्त करने के कारण वह जरूरत से ज्यादा व्यभिचारी हो गया। उसने अपने रंग-रूप का पूरा फायदा उठाया। अपने मामा से अच्छे गुणों को न सीखकर अनैतिक ढंग से काम-सुख में रत रहता था। रूपवान तो था ही, धनवान और बलवान भी था। वह कुकर्म करते हुए राजसिपाहियों द्वारा तीन बार पकड़ा गया। पर मामा से अपने सम्बन्ध के कारण बच निकला। रात के प्रहरी राजपुरुष उसको व्यभिचार का दंड दिलाने के लिए राजा के पास ले जाते। राजा पूरी बात सुनने के बाद कहता, "मैं महाश्रेष्ठी अनाथपिंडिक के विषय में सोचकर फैसला देने में संकोच करता हूँ।" ऐसा कहकर राजा उसे छोड़ दिया करता, लेकिन खेम बार-बार वही दुष्कर्म करता रहा, और हर बार छूटता रहा।
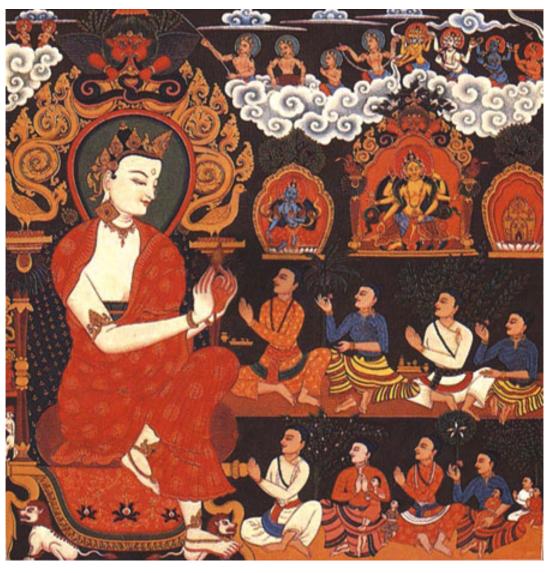
गाथा: अपुञ्ञलाभो च गती च पापिका, भीतस्स भीताय रती च थोकिका।
राजा च दण्डं गरूकं पणेति, तस्मा नरो परदारं न सेवे।। 310

अर्थ: इस पाप कर्म के चार अन्य दोष हैं :- 1. अपुण्यलाभ 2. पापमय, बुरी गति अर्थात् पुनर्जन्म 3. भयभीत पुरुष की भयभीत स्त्री से अत्यल्प कामक्रीड़ा तथा 4. इस अपराध के कारण राजा का हाथ-पैर काटने जैसा भारी दंड देना। इसलिए समझदार आदमी को चाहिए कि वह पराई स्त्री का संग न करे।

व्यभिचार के दुष्परिणाम
पराई स्त्री के संग का फल : खेम की कथा

अनाथपिंडिक को लगा कि अपने भांजे को सुधारने के लिए उसके सामने आशा की एक ही किरण थी, वह उसे लेकर शास्ता के पास जाए।

उसने भांजे को मनाया और मामा-भांजा शाक्य मुनि के दरबार में जा पहुँचे। शास्ता के सामने गुहार लगाई, "भन्ते ! कुछ कीजिए ! इसकी मति मारी गई है। इसको अच्छाई के रास्ते पर ले आइए।"

शास्ता ने उसे धर्मोंपदेश दिया ताकि उसके हृदय में धार्मिक संवेदना उत्पन्न हो। उसे पराई स्त्री के साथ अवैध सम्बन्ध रखने से होने वाले दोष के विषय में भी बताया।
बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि वह पराई स्त्री से सम्बन्ध न बनावे। ऐसे मनुष्य को मिलता भी क्या है- पाप कर्म, बुरी गति और भयभीत पुरुष को भयभीत स्त्री से थोड़ी सी प्रीति। इस पृष्ठभूमि में समाज के भय से डरी हुई उस स्त्री के साथ थोड़े समय की वह मैत्री बहुत सुखदायी नहीं होती क्योंकि दुष्कर्म करते समय दोनों को भय बना रहता है कि कहीं कोई उन्हें देख न ले।

शास्ता ने उन कारणों को भी स्पष्ट किया जिनसे खेमक के प्रति महिलायें इतनी अधिक आकृष्ट हो रही थीं। खेमक पूर्व जन्म में काश्यप बुद्ध के समय एक श्रेष्ठ पहलवान था। उसने उनके स्तूप पर दो सोने की पताकायें फहराईं और काश्यप बुद्ध से वर माँगा, "परिवार की स्त्रियों के अलावा भी जो स्त्री मुझे देखे वह पहली ही बार में मुझपर आसक्त हो जाए।" यही था उसका पूर्वकर्म। इसी प्रार्थना के कारण आज उसे इतनी स्त्रियाँ उपभोग के लिए मिल रही थीं तथा उसे देखते ही उस पर मोहित हो जा रही थीं।

गाथा: कुसो यथा दुग्गहितो, हत्थमेवानुकन्तति।
सामञ्ञं दुप्परामट्ठं, निरयायुपकड्ढति।। 311।।

अर्थ: जिस प्रकार कुश को अगर ठीक से न पकड़ा जाए तो हाथ कट जाता है उसी प्रकार श्रामण्य (संन्यास) ठीक से धारण न किया जाए तो वह नरक ले जाता है।

श्रामण्य (संन्यास) ठीक से धारण करें
दुर्वच भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन,श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन में विहरते थे। उस समय किसी भिक्षु ने अनजाने में कुशाग्रास काट दिया। इस घास के तिनके को काटने के बाद उसे अपने किये पर पश्चाताप होने लगा। उसे लगा कि कहीं उसने कोई गलत काम तो नहीं कर दिया है। अतः वह अपने एक भिक्षु मित्र के पास गया और उससे पूछा, "बन्धु ! किसी घास के तिनके को तोड़ देने का क्या फल होगा ? घास काटने में कोई आपत्ति होगी क्या ?" "मैंने कुशाग्रास को काटा है। कोई गलत काम तो नहीं किया है ?"
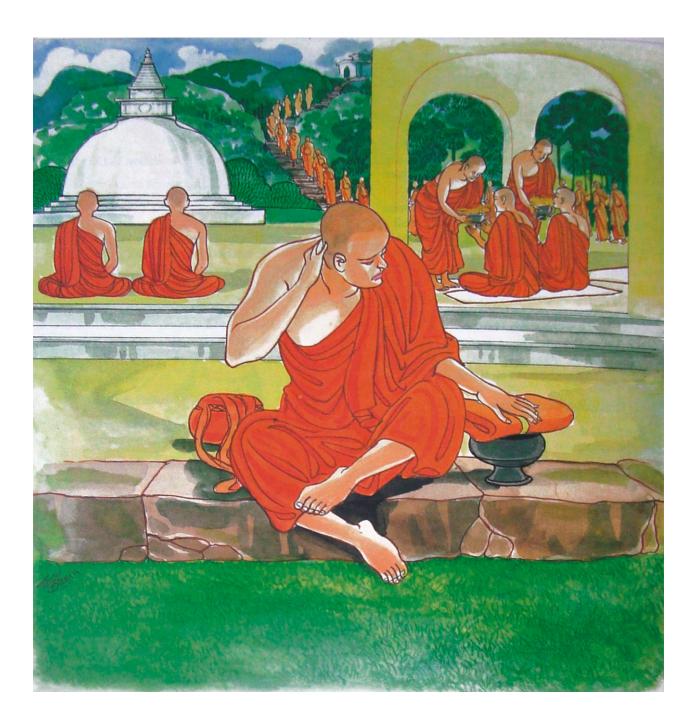
गाथा: यं किञ्चि सिथिलं कम्मं, संकिलिट्ठञ्च यं वतं।
सङ्कस्सरं ब्रह्मचरियं, न तं होति महप्फलं।। 312।।

अर्थः जो कर्म शिथिलता (ढीला-ढाला) से किया जाये, जो व्रत मलिन (मल युक्त) है, और जो ब्रह्मचर्य अशुद्ध (संदिग्ध) है उससे महान फल (महाफल, अधिक फल) नहीं मिलता।

किसे महान फल मिलता है ?
दुर्वच भिक्षु की कथा

भिक्षु मित्र ने उत्तर दिया, "तुम घास का तिनका तोड़ने पर चिंता कर रहे हो। अरे ! घास तोड़ने से क्या होगा ? उसको तोड़ दिया, मसल दिया, टुकड़े कर दिए, फेंक दिया या किसी भिक्षु को दे दिया। बस, कहानी खतम ! "ऐसा कहकर उसने अपने सामने की घास को तोड़ा, उसके दो-तीन टुकड़े किए और फेंक दिया। वह और भी घास उखाड़ने लगा- यह दिखाने के लिए कि कुशाग्रास उखाड़ने में कोई हानि नहीं है।

गाथा: कयिरा चे कयिराथेनं, दळ्हमेनं परक्कमे।
सिथिलो हि परिब्बाजो, भिय्यो आकिरते रजं।। 313।।

अर्थ: यदि किसी कार्य को करना है तो उसे संकल्पपूर्वक करें और उसे दृढ़तापूर्वक कर डालें। शिथिल परिव्राजक, अपनी शिथिलता के कारण (अपने अन्दर राग आदि से) अपने श्रमण भाव पर अधिक मल ही बिखेरता है अर्थात् अधिक धूल (कलंक) ही फैलाता है।

कर्म संकल्पपूर्वक करें, शिथिलता न आने दें
दुर्वच भिक्षु की कथा

अपने मित्र के उत्तर, व्यवहार और आचरण से वह भिक्षु संतुष्ट नहीं हुआ। उसकी जिज्ञासा शांत नहीं हुई। अतः अपनी जिज्ञासा शांत करने के लिए वह शास्ता के पास गया। उसने शास्ता को सारी बातें बताईं। शास्ता ने कहा कि द्वितीय भिक्षु ने न तो सही उत्तर दिया था और न सही सलाह दी थी। उन्होंने उसे निन्दा के भाव से धिक्कारा और फिर समझाया, "कोई भी तेज धार वाली घास जैसे कुशा घास या खजूर की पत्ती ठीक से नहीं पकड़ी जाये तो वह हाथ काट देती है, उसी प्रकार यदि भिक्षु अपनी साधना उचित पद्धति से न करे, शीलों के पालन में कोताही बरते तो शील आदि के खंडित होने से वह साधना पद्धति नरक की ओर ही ले जाने वाली होती है। यह नहीं सोचना चाहिए कि प्रव्रज्या मिल गई तो सब कुछ हो गया। अगर सचमुच प्रव्रज्या कर्म करना है, सचमुच प्रव्रजित होना है, एक सच्चा भिक्षु बनना है तो फिर हमें ईमानदारी से प्रव्रज्या स्वीकार करनी चाहिए। इसे भली-भाँति स्वीकार कर पूरे यत्न से लग जाना चाहिए। जो कोई भी कर्म प्रारम्भ किया जाए उसे पूरे संकल्प के साथ तथा स्थिरभाव से पूरा कर लेना चाहिए। किसी अन्य की सहायता की उम्मीद न लगाकर उस कार्य को स्वयं पूरा कर लेना चाहिए।"

परिस्थिति के अनुकूल शास्ता ने ये तीन गाथायें कहीं।

गाथा: अकतं दुक्कटं सेय्यो, पच्छा तप्पति दुक्कटं।
कतञ्च सुकतं सेय्यो, यं कत्वा नानुतप्पति।। 314।।

अर्थ: दुष्कर्म का नहीं किया जाना अच्छा है क्योंकि दुष्कर्म करने वाले को बाद में पश्चाताप (अनुताप) करना पड़ता है। इसके विपरीत सत्कर्म करना अच्छा है क्योंकि बाद में किसी प्रकार का पश्चाताप (अनुताप) नहीं करना पड़ता है।

सत्कर्म करें, दुष्कर्म से बचें
ईर्ष्यालु स्त्री की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक गृहस्थ का अपने ही घर की दासी से अवैध सम्बन्ध हो गया। उसकी पत्नी को यह पता लग गया। उसके क्रोध का पारा आसमान को छू गया। उसने उस नौकरानी से बदला लेने का विचार किया। क्रोधी मालकिन ने नौकरानी के हाथ-पाँव बँधवाकर उसके नाक एवं कान कटवा दिये। उसे गुड़ की कोठरी में धक्का देकर बंद कर दिया। अपने हाव-भाव से पति को जरा भी नहीं लगने दिया कि उसने उस दासी को इतनी कठोर सजा दी है। दूसरे दिन उसने पति से कहा, "स्वामी ! धर्म-प्रवचन का समय हो गया है, विहार चलें ?" पति को साथ लेकर वह बौद्ध विहार पहुँची तथा धर्म श्रवण हेतु बैठ गई।

पति-पत्नी के विहार चले जाने के बाद उनके घर कुछ अतिथि आए। वे दासी के रिश्तेदार थे। उन्होंने दासी की आवाज सुनी तो दरवाजा खोलकर उसे मुक्त कर दिया।

स्वतंत्र होने के बाद, अपनी फरियाद लेकर वह सीधा शाक्य-मुनि के पास पहुँची। बुद्ध चारों परिषद् के बीच बैठकर धर्म प्रवचन दे रहे थे। दासी ने अपनी पूरी दास्तान सुनाई।

उसकी पूरी कहानी सुनकर, धर्मोपदेश देते हुए तथागत ने समझाया, 'इसे लोग नहीं जान पायेंगे' ऐसा सोचकर छोटे से छोटा बुरा कर्म भी नहीं करना चाहिए। छुपकर पाप कर्म करने वालों के बारे में जब लोगों को पता चलता है तब उन्हें अत्यधिक आन्तरिक पीड़ा और शर्मिन्दगी महसूस होती है। इसके विपरीत 'लोग जानें या न जानें', सत्कर्म करना ही चाहिए। सत्कर्म छोटे से छोटा भी क्यों न हो, उसे कर देना चाहिए। छुपकर, गुप्त रूप से किया गया सत्कर्म भी सुख और आन्तरिक खुशी देता है।
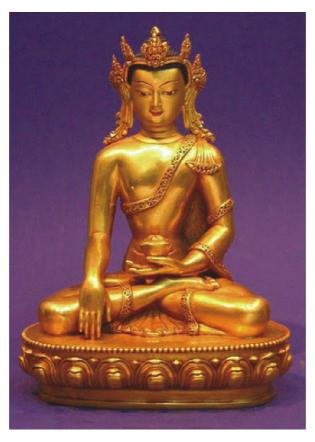
गाथा: नगरं यथा पच्चन्तं, गुत्तं सन्तरबाहिरं।
एवं गोपेथ अत्तानं, खणो वो मा उपच्चगा।
खणातीता हि सोचन्ति, निरयम्हि समप्पिता।।315।।

अर्थ: जिस प्रकार सीमा पर स्थित नगर की भीतर-बाहर रक्षा की जाती है, उसी प्रकार साधक को अपनी आत्मरक्षा करनी चाहिए। इसमें क्षण भर भी प्रमाद (चूक) नहीं करना चाहिए। समय विषयक प्रमाद (क्षण भर की भूल) करने वाले दुष्कर्मों के चक्र में पड़कर (समय हाथ से निकल जाने के कारण) नरक के शोक को प्राप्त करते हैं।

प्रमाद से बचें : सतर्कता हटी , दुर्घटना घटी
बहुत सारे आगन्तुक भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

वर्षा ऋतु आई। भिक्षुओं के एक समूह को देश की सीमा के पास एक गाँव में वर्षावास की अवधि बितानी पड़ी। वर्षावास तीन महीनों का होता है। भिक्षुगण उस अवधि में एक ही जगह रहते हैं।

उन भिक्षुओं का पहला महीना बहुत अच्छी तरह गुजरा। गाँव वालों ने उनकी अच्छी आवभगत की। पर दूसरे महीने में एक घटना हो गई। कुछ चोर आये और जिस गाँव (भिक्षाग्राम) में भिक्षु रुके थे उसे लूट लिया और कुछ ग्रामवासियों को बंधक भी बना लिया। तब से लोगों ने चोरों से रक्षा करने के लिए उस नगर के चारों तरफ घेरा बना लिया और उसका फाटक बन्द रखने लगे। अब भिक्षुओं को नगर में आने-जाने में कठिनाई होने लगी। भिक्षाटन में भी व्यवधान आ खड़ा हुआ।

वर्षाकाल किसी तरह बीता। भिक्षुगण का समूह उस गाँव से निकला और श्रावस्ती पहुँचा जहाँ शास्ता ने वर्षाकाल बिताया था। बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्ति के बाद अधिकांश वर्षा काल यहीं बिताये। विहार पहुँचकर उन्होंने तथागत को सादर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। शास्ता ने उनका कुशल-क्षेम पूछा। उन्होंने यह भी पूछा कि वर्षाकाल कैसा बीता, उनकी साधना कैसी रही। भिक्षुओं ने अपने-अपने अनुभव सुनाते हुए शिकायत की भाँति कहा, "भन्ते ! पहला मास तो सुखपूर्वक बीता पर दूसरे माह चोरों ने उपासकों के घरों में चोरी कर ली। अत: दूसरे महीने से उपासक हमारी सेवा ठीक से नहीं कर पाये।"

शाक्य-मुनि ने भिक्षुओं को सांत्वना दी, "भिक्षुओं ! इस विषय पर चिंतन नहीं करना चाहिए कि सर्वत्र एवं सर्वदा सुखपूर्वक रहने का अवसर मिले। सुखावास सदैव उपलब्ध नहीं हुआ करता। परन्तु तुम्हें चोरी की घटना और अपने अनुभव से सबक लेना चाहिए। नगरवासियों ने चोरों के आक्रमण से बचने के लिए नगर की रक्षा करने का उपाय ढूँढ़ निकाला। उसी प्रकार तुम्हें भी अपने शरीर (आत्मभाव) की रक्षा करनी चाहिए। भिक्षुओं ! जैसे उन नगरवासियों ने उस नगर की रक्षा करने हेतु अन्दर सुरक्षित भवन तथा खाई आदि बनवाये तथा बाहर की तरफ प्राकार आदि बनवाकर उस नगर की रक्षा दृढ़ की; उसी तरह तुमको अपनी स्मृति व्यवस्थित रखते हुए छह आध्यात्मिक द्वारों को बन्द कर इन द्वारों की रक्षा करते हुए आत्मरक्षा करते रहना चाहिए।"
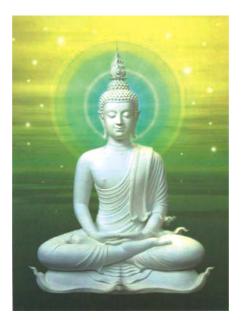
गाथा: अलज्जिताये लज्जन्ति, लज्जिताये न लज्जरे।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 316।।

अर्थ: अलज्जा के काम में जो लज्जा करते हैं तथा लज्जा के काम में जो लज्जा नहीं करते, ऐसे झूठी धारणा वाले लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं।

लज्जा और अलज्जा में भेद जानें
निर्ग्रन्थों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध के जेतवन वास की कथा है। एक दिन कुछ निर्ग्रन्थ साधु भिक्षाटन के लिए जा रहे थे। वे अपने भिक्षापात्र ढँके हुए थे। उनको देखकर कुछ भिक्षुओं ने आपस में चर्चा की, "मित्रों ! शरीर से सभी प्रकार नंगे घूमते हुए साधुओं से ये निर्ग्रन्थ थोड़ा श्रेष्ठ हैं जो कम से कम अपने भिक्षापात्र को तो ढँककर रखते हैं। उनकी तुलना में इनके अन्दर कुछ तो लज्जा, हया बची हुई है।" निर्ग्रन्थों ने उनकी बात सुनी तो स्पष्ट किया, "मित्रों ! हम लोग भिक्षा पात्र को निश्चय ही ढँककर रखते हैं पर हम लोग इस लज्जा से इसे नहीं ढँकते कि हम नंगे जा रहे हैं। हमारे नंगेपन से इसका कोई लेना-देना नहीं है, बल्कि हम इसे यह सोचकर ढँकते हैं कि पांशु और मिट्टी आदि के अन्दर भी सूक्ष्मजीव रहते हैं और कहीं वे भिक्षापात्र में गिर न जायें।" इस प्रकार इस विषय पर निर्ग्रन्थों और भिक्षुओं के बीच काफी देर तक वार्त्तालाप होता रहा।

बाद में जब भिक्षुगण शास्ता के सम्मुख बैठे तो निर्ग्रन्थों के साथ हुए वाद-विवाद के विषय में उन्हें बताया। शास्ता ने उन्हें स्पष्ट करते हुए बताया, "न लज्जा करने योग्य विषय में लज्जा करना तथा लज्जा करने की बात में लज्जा नहीं करने वाले व्यक्ति की अंततः दुर्गति होती है। न लज्जा करने योग्य विषय में, जैसे भिक्षापात्र को ढँककर उससे लज्जा करते हैं। वे लज्जा करने योग्य विषय मूत्रेन्द्रिय को अनावृत रखकर लोक में विचरण करते हुए लज्जित नहीं होते। इस तरह उन निर्ग्रन्थों का अलज्जितव्य में लज्जित होना तथा लज्जितव्य में लज्जित न होना- उनको मिथ्यादृष्टि तक पहुँचा देता है। उस मिथ्यादृष्टि को स्वीकार कर लोक में विचरण करते हुए मिथ्यादृष्टिगृहीत वे प्राणी निरय आदि विविध भेदों वाली दुर्गति को प्राप्त होते हैं।
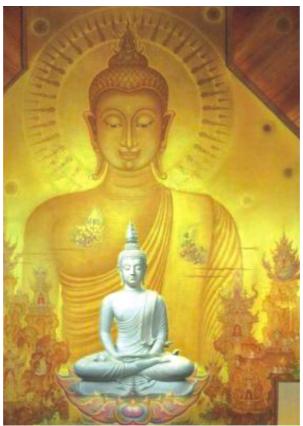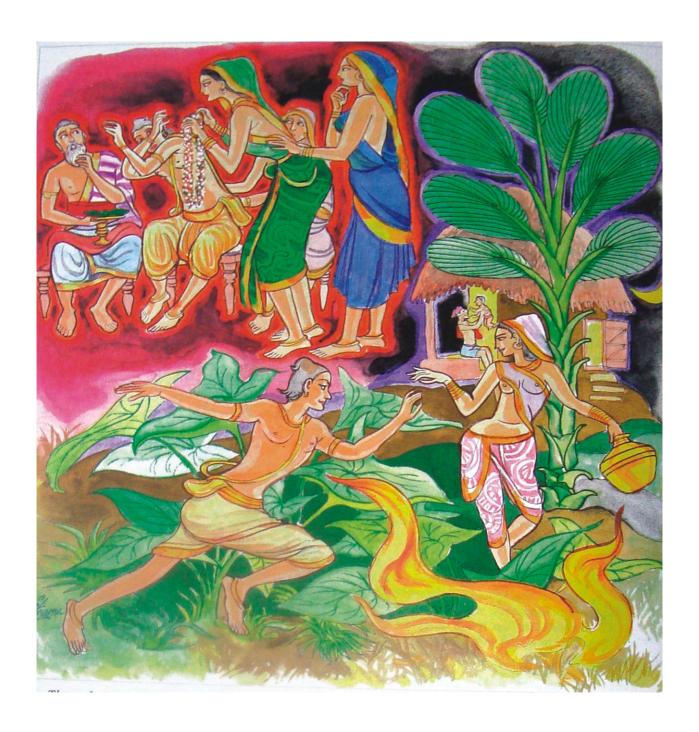
गाथा: अभये भयदस्सिनो, भये चाभयदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 317।।

अर्थ: अभय के स्थान पर जो भय करते हैं और भय में जो भय रहित रहते हैं, ऐसे झूठी धारणा वाले लोग दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"

भय-अभय का भेद न जानने वाले दुर्गति प्राप्त करेंगे
निर्ग्रन्थों की कथा

भिक्षापात्र के कारण किसी को राग, द्वेष, मोह, मान, मिथ्यादृष्टि, क्लेश दुश्चरित आदि का कोई भय उत्पन्न नहीं होता, अत: वह 'अभय' कहलाता है। परन्तु भय से उसको ढँकते हुए वे अभय में भय प्रदर्शित करते हैं। इसके विपरीत, मूत्रेन्द्रिय के कारण उक्त रागादि का भय उत्पन्न होता देखा जाता है, अत: उसे 'भय' कहा जा सकता है। उस मूत्रेन्द्रिय को खुला रखकर भय में अभय का प्रदर्शन करते हैं। जैसे को तैसा न ग्रहण करने से मिथ्यादृष्टियुक्त हो जाने के कारण वे निर्ग्रन्थ तथा उनके सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले प्राणी दुर्गति को प्राप्त होते हैं।"
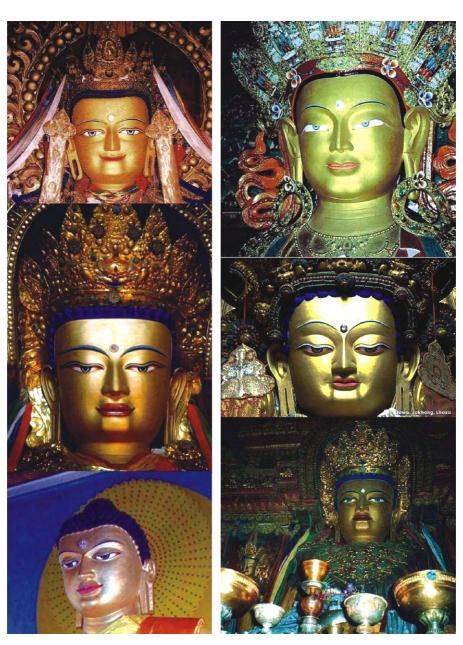
गाथा: अवज्जे वज्जमतिनो, वज्जे चावज्जदस्सिनो।
मिच्छादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति दुग्गतिं।। 318।।

अर्थ: जो अदोष में दोष बुद्धि रखते हैं और दोष में अदोष दृष्टि रखते हैं, ऐसे लोग मिथ्या दृष्टि के कारण दुर्गति को प्राप्त करते हैं।

मिथ्यादृष्टि वाला दुर्गति पायेगा
तैर्थिक शिष्यों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय की बात है। बुद्ध के उपासकों के पुत्र किसी अन्य सम्प्रदाय के उपासकों के पुत्रों के साथ खेल रहे थे। उनके माता-पिता ने उन्हें खेलते हुए देखा। जब वे घर लौटे तब अन्य सम्प्रदाय के उपासकों ने अपने बच्चों को सावधान किया, "तुम शाक्यमुनि के भिक्षुओं को कभी प्रणाम न करना और न ही कभी उनके विहार जाना।" उन्होंने अपने बच्चों को इस बात की शपथ दिला दी।

एक दिन ये बालक जेतवन के मुख्य द्वार के बाहर खेल रहे थे। गर्मी का दिन था। उन्हें प्यास लग गई। पानी पीने के लिए उन्होंने इधर-उधर देखा तो उन्हें जेतवन विहार छोड़ और कुछ भी नजर नहीं आया। प्यास तो प्यास होती है। यह जात-पात, ऊँच-नीच, धर्म-वर्ण नहीं देखती। लड़के इस बात को भूल गए कि उन्होंने अपने माता-पिता को प्रण दे रखा था कि वे कभी भी विहार में नहीं जायेंगे। दोस्तों ने एक लड़के को समझाकर अंदर भेजा, "तुम अंदर जाओ। खुद वहीं पानी पी लेना और हम लोगों के लिए पानी लेते आना।" लड़के ने वैसा ही किया। वह जेतवन विहार के अंदर चला गया।

लड़के के कर्म का प्रारब्ध देखिए ! उसे अंदर प्रवेश करते ही शाक्य-मुनि के भव्य स्वरूप के दर्शन होते हैं। जैसे लोहा चुम्बक के पास खींचा चला जाता है, वह लड़का भी तथागत के पास पहुँच जाता है तथा जगत्राता से पीने के लिए पानी माँगता है। जिसने जीवन पर्यन्त लोगों की आध्यात्मिक भूख मिटाई हो वह पानी तो पिलायेगा ही ! बुद्ध उसे पानी पिलाते हैं। दोनों में मित्रता का भाव पैदा हो जाता है। लड़का बताता है कि उसके माता-पिता ने उसे विहार में आने से मना कर रखा है। बुद्ध इस बात पर ध्यान नहीं देते और उस बच्चे से कहते हैं, "अपने मित्रों को भी लेकर आओ और यहीं पर जितना मन हो, पेट भर कर पानी पियो।"

शास्ता और उस बालक में मैत्री सम्बन्ध बन चुका है। मैत्री दो हाथों से बजने वाली ताली की तरह होती है। सभी मित्र बुद्ध के सम्बन्ध में सुनकर बहुत प्रभावित होते हैं।

जो लड़का विहार में गया था वह पहले प्रवेश करता है, फिर उसके पीछे उनकी पूरी मित्र मंडली। वे सभी भी बुद्ध के मुख पर मैत्री, करुणा, प्रेम एवं दया भाव देखकर स्तब्ध रह जाते हैं। पानी पीते हैं, प्यास बुझाते हैं पर वापस खेलने नहीं जाते। आन्तरिक प्यास बुझाने के लिए वहीं रुक जाते हैं।

गाथा: वज्जञ्च वज्जतो ञत्वा, अवज्जञ्च अवज्जतो।
सम्मादिट्ठिसमादाना, सत्ता गच्छन्ति सुग्गतिं।। 319।।

अर्थः जो दोष को दोष जानते हैं और अदोष को अदोष जानते हैं। ऐसे सम्यक दृष्टि वाले पुरुष सुगति को प्राप्त होते हैं।

सम्यक दृष्टि वाला सुगति पायेगा
तैर्थिक शिष्यों की कथा

तथागत बच्चों को उनके अनुरूप धर्म कथा सुनाते हैं। उनके जैसा महान शिक्षक तो इस धरती पर आजतक पैदा नहीं हुआ। याद करें कि उन्होंने अपनी चेतना को किस निम्न स्तर तक पहुँचाया था ताकि वह किसा गोतमी को उसकी ही भाषा में, उसी के स्तर पर त्रिरत्न की शिक्षा दे सकें।

बच्चे धर्म प्रवचन सुनते हैं। त्रिरत्न और पंचशील में स्थित हो जाते हैं। मुदित मन से घर जाते हैं और खूब प्रेम से अपने अनुभव सुनाते हैं। उनकी बात सुनकर उनके माता-पिता अपना सिर पीट लेते हैं। वे अपने पड़ोसियों के पास जाकर विलाप करते हैं, "हमारे बच्चों की मति भ्रष्ट हो गई। वे धर्मविरोधी हो गये।" सभी मिलकर बच्चों की सोच बदलने की कोशिश करते हैं। पर उनका मन पक्के रंग से रंगे वस्त्र की तरह हो गया है। कितना भी धोओ, रंग उतरता ही नहीं।

सभी अभिभावक मिलकर राय करते हैं, "हम सभी एक साथ श्रमण गौतम के पास चलेंगे। उससे कह देंगे कि तुम अपनी शिक्षा इनसे वापस लो और अगर ये बालक उससे भी नहीं बदले तो हम इन्हें श्रमण गौतम को ही दे देंगे। इस प्रकार सभी बच्चों के माता-पिता अपने विशाल परिवारों को इकट्ठा कर जेतवन विहार गये।

शास्ता ने उनकी बातें सुनी और सबों को धर्म में प्रतिष्ठित करने के लिए ये दो गाथायें कहीं।

DHAMMAPADA
NIRAYA VAGGA

सर्वश्रेष्ठ कौन है ?
धम्मपद
नाग वर्ग
गाथा और कथा

सर्वश्रेष्ठ कौन है ?
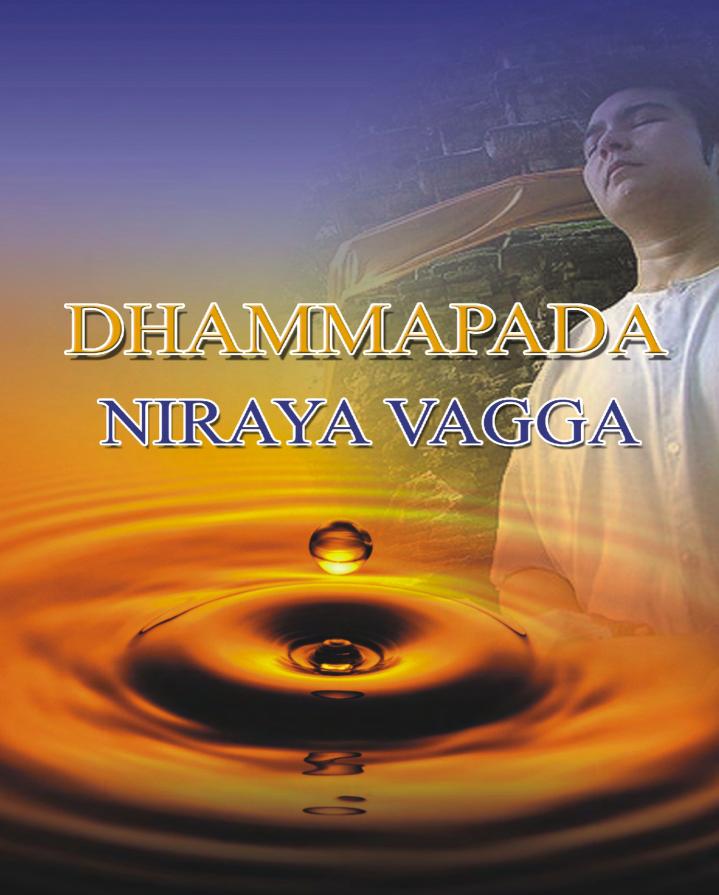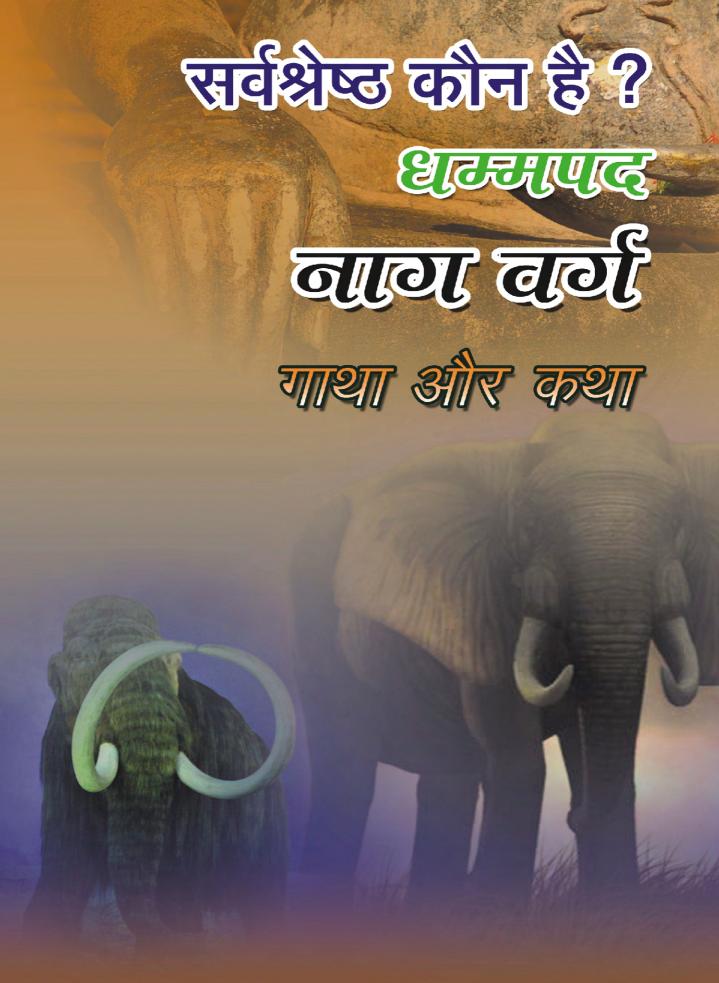
धम्मपद

नाग वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
ह्षीकेश शरण

विषय सूची

नाग वर्ग

गाथा: अहं नागोव संगामे, चापतो पतितं सरं।
अतिवाक्यं तितिक्खिस्सं, दुस्सीलो हि बहुज्जनो।। 320।।

अर्थः जैसे लड़ाई में हाथी धनुष के वाण को सहता है, वैसे ही मैं कटु-वाक्यों को सहूँगा क्योंकि संसार में दुर्जन लोग अधिक हैं।

जैसे हाथी वाण को सहता है, वैसे ही कटु-वाक्य सहें
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

कहते हैं कि प्रतिशोध की ज्वाला अगर नारी के अन्दर उत्पन्न हो जाए तो उसके सामने ज्वालामुखी को भी शीतल ही मानना चाहिए। बौद्ध काल में एक चरित्र आता है- मागन्दिय का। वह सुन्दरता की प्रतिमूर्ति थी। उसके माता-पिता ने बुद्ध को गृहस्थ बनाना चाहा, उससे विवाह रचाना चाहा। पर तथागत ने उन्हें समझाया, "जब मार की सभी पुत्रियाँ मिलकर भी मुझे मोहित नहीं कर सकीं तो इस कूड़े के बर्तन में क्या रखा है जिसे बाहर से मात्र रंग दिया गया है ? "

विधि की भी क्या विडंबना है ? एक ही चाकू से किसी की हत्या कर दी जाती है और उसी चाकू से शल्य चिकित्सा करके किसी घाव की पीड़ा से मुक्ति ! बुद्ध के वचन मागन्दिय के माता-पिता के ऊपर तो अमृत तुल्य पड़े और उन्होंने अनागामी फल प्राप्त कर लिया। पर मागन्दिय ने विष वृक्ष उगाया, जो पुष्पित हुआ, पल्लवित हुआ, मागन्दिय ने उस विष वृक्ष के फल काटे, फल खाये।

गाथा: दन्तं नयन्ति समितिं, दन्तं राजाभिरूहति।
दन्तो सेट्ठो मनुस्सेसु, योतिवाक्यं तितिक्खति।। 321।।

अर्थ: दान्त (शिक्षित हाथी) का युद्ध में इस्तेमाल होता है, दान्त पर राजा चढ़ता है। मनुष्यों में भी दान्त (अपना दमन किया हुआ) श्रेष्ठ कहलाता है क्योंकि वह दूसरों के कटु वचनों को सह लेता है।

आत्म-दमन करने वाला सर्वश्रेष्ठ होता है
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

समय का चक्र चलता है। मागन्दिय का विवाह राजा उदयन के साथ हो जाता है। अपनी सौतन सामावती के माध्यम से वह बुद्ध से बदला नहीं ले पाती है। सोचती है कि पैसे देकर कुछ भाड़े के टट्टू का इस्तेमाल क्यों न करूँ ? इसलिए पैसों का लालच देकर वह कुछ लोगों को प्रशिक्षित करती है कि वे नगर में जायें तथा सभी जगह बुद्ध और उनके संघ के प्रति झूठी अफवाहें फैलायें ताकि लोगों के मन में उनके प्रति घृणा भाव पैदा हो जाए और उनकी बेइज्जती होने लगे। इन अपशब्दों को सुनकर वे निश्चय ही नगर छोड़कर चले जायेंगे। अतः कहना प्रारंभ कर दो, 'तू चोर है', 'तू मूर्ख है', 'तू अज्ञानी है', 'तू लुटेरा है', 'तू ऊँट है', 'तू बैल है', 'तू पशु योनि में गिरेगा', 'तेरी सुगति कभी नहीं होगी, तेरी दुर्गति होगी' आदि-आदि। इस प्रकार के अपशब्दों का इस्तेमाल कर वे भाड़े के टट्टू शास्ता और भिक्षु संघ को निरंतर अपमानित करने लगे। अपमान के शब्दों को सुन-सुनकर भन्ते आनन्द के कान पक गए। वे अब कोई अपशब्द सुनने की स्थिति में नहीं थे। अतः शास्ता के पास गए तथा निवेदन किया, "भन्ते ! यहाँ के नागरिक हमारे ऊपर आक्रोश प्रकट कर रहे हैं, गालियाँ दे रहे हैं। इस नगर के निवासी सभ्य और अच्छे नहीं है। यह नगर हम लोगों के रहने लायक ठीक नहीं है। सभी भिक्षु, भिक्षुणी त्रस्त हैं, झुंड के झुंड लोगों की टोली हमारे पीछे चलती है और हमें भला-बुरा कहती है। सभी जगह तमाशा होने लगता है। मेला लग जाता है। चलते लोग, सड़क पर खड़े होकर हमें देखने लगते हैं। आपका संदेश है कि सदा शांति बनाकर रखो, संयमित रहो, उद्विग्न मत होवो। हम आपकी आज्ञा का पालन करके धैर्य बनाकर रह रहे हैं पर अब पानी सर के ऊपर से बह रहा है। अतः मेरा सुझाव है कि हम इस नगर को छोड़कर कहीं और चलें।"

गाथा: वरमस्सतरा दन्ता, आजानीया च सिन्धवा।
कुञ्जरा च महानागा, अत्तदन्तो ततो वरं।। 322।।

अर्थ: सुशिक्षित खच्चर, सिंधु देश के सुशिक्षित घोड़े, तथा सुशिक्षित घोड़े ही श्रेष्ठ कहलाते हैं। पर इन सब से भी श्रेष्ठ होता है आत्मनियंत्रक साधक।

आत्म नियंत्रण ही सबसे कठिन साधन है
आत्म दमन की कथा

स्थान : कौसाम्बी

शास्ता ने पूछा, "कहाँ चलोगे ? " "किसी दूसरे नगर।" "वहाँ के लोगों ने भी यदि इसी प्रकार का आक्रोश किया, अगर वहाँ भी परिस्थितियाँ ऐसी ही रहीं तो फिर क्या करोगे ? वहाँ से फिर कहाँ चलोगे ? " "किसी तीसरे नगर।" "और वहाँ की परिस्थितियाँ भी अनुकूल नहीं हुईं तो ? " "तो फिर किसी अन्य नगर चलेंगे।" शाक्य मुनि ने समझाया, "कहाँ-कहाँ जाते रहोगे, आनन्द ? जहाँ पर समस्या खड़ी हुई है वहीं पर उसका समाधान खोजने का प्रयास करो और अगर कहीं चलने का ही तुम्हारा सुझाव है तो फिर विवाद के शांत होने और स्थिति सामान्य होने पर ही जाना उपयुक्त होगा।" शास्ता ने आनन्द से एक बार पुनः पूछा, "आनन्द ! ये आक्रोश कौन करते हैं ? " आनन्द ने उत्तर दिया, "दास-दासी और सभी जन, क्रोध प्रकट करते हैं।" शास्ता ने समझाया, "आनन्द ! ऐसा किसी भी जगह हो सकता है। अतः युद्धभूमि के हाथी के समान बनो। जैसे युद्ध में उतरा हुआ प्रशिक्षित हाथी भाले, बर्छे आदि की चोट को सहन करता है और सहनशीलता का परिचय देता हुआ अपने ऊपर पड़ने वाले वाणों के प्रहार को निर्भीकता बर्दाश्त करता है, मैं उसी प्रकार इन दु:शील व्यक्तियों द्वारा कहे गए कटु वचनों को सहूँगा और अपना धैर्य नहीं खोऊँगा। कटु वचन कहने वाले नागरिक भले ही अति दुष्ट हों, जो चाहते हों वे बोल रहे हों पर उन बातों को स्वीकार या अस्वीकार करना मेरा कर्त्तव्य है। मैं जानता हूँ कि सत्य क्या है। अतः उनके मिथ्या वचनों से विचलित नहीं होऊँगा।"

"मनुष्यों में जो चार आर्य सत्यों की साधना करता है वह सुशिक्षित, निर्दोष पुरुष श्रेष्ठ कहलाता है। अपशब्दों का बार-बार व्यवहार किये जाने पर भी वह उन्हें सहता है, उत्तर नहीं देता।"

यह कहकर शास्ता ने ये तीन गाथायें कहीं।

गाथा: न हि एतेहि यानेहि, गच्छेय्य अगतं दिसं।
यथात्तना सुदन्तेन, दन्तो दन्तेन गच्छति।।323।।

अर्थ: इन यानों (हाथी, घोड़ा आदि) से कोई निर्वाण की ओर नहीं जा सकता। जिसने अपने आप का दमन कर लिया है वही सुदान्त (श्रेष्ठ ढंग से प्रशिक्षित) वहाँ पहुँच सकता है।

सुदान्त ही निर्वाण तक पहुँच सकेगा
महावत भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

अचिरावती (राप्ती) नदी का किनारा। कुछ भिक्षुगण नदी किनारे खड़े थे। देख रहे थे एक महावत को एक हाथी को अनुशासित करते हुए। वह महावत हर प्रकार की कोशिश कर रहा था कि हाथी को वश में कर ले पर सफल नहीं हो पा रहा था। भिक्षुओं में एक भिक्षु ऐसा भी था जो पूर्व जन्म में एक महावत था। उसने महावत को बताया, "अगर तुम अमुक जगह पर बर्छी से मारोगे तो उसका असर होगा और हाथी तुम्हारे वश में आ जाएगा।" महावत ने ऐसा ही किया और हाथी अनुशासित हो गया। महावत ने हाथी को वशीभूत रखने का मंत्र सीख लिया।

बात शाक्य-मुनि तक पहुँची। उन्होंने उस भिक्षु को बुलाकर समझाया, "भिक्षुओं ! इन सवारियों (अर्थात् हाथियों) को अनुशासित और प्रशिक्षित करने से कोई विशेष लाभ नहीं है। सच्चा लाभ तो अपने आप को अनुशासित और प्रशिक्षित करने से प्राप्त होगा। इसलिए सांसारिक गज को वश में करने की बजाय अपने आप को वश में करो। यदि निर्वाण की प्राप्ति करनी है तो अपना दमन किये बिना, अपने आप को वश में किये बिना यह कदापि संभव नहीं है। इन साधारण यानों, हाथी-घोड़ों आदि से, स्वप्न में भी, गलती से भी, उस अगत, अगम्य स्थान, निर्वाण, तक नहीं पहुँच सकोगे। वहाँ पहुँचने के लिए पहले इन्द्रियों का दमन करो और फिर आर्यमार्ग की साधना करो ताकि अपने आप को भली-भांति संयमित कर निर्विकार चित्त वाले हो सको। तभी निर्वाण तक पहुँच सकोगे। आत्म निग्रह से बढ़कर दुनियाँ में और कोई चीज नहीं है।"
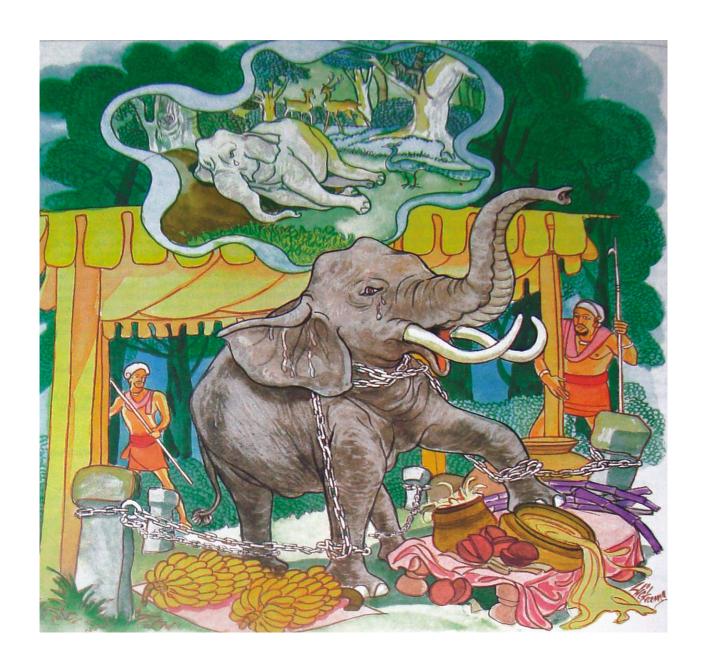
गाथा: धनपालो नाम कुञ्जरो, कटुकभेदनो दुन्निवारयो।
बद्धो कबळं न भुञ्जति, सुमरति नागवनस्स कुञ्जरो।। 324।।

अर्थ: तीक्ष्ण मदवाला होने के कारण सेना को तितर-बितर करने वाला, किसी के वश में न आने वाला, धनपालक नाम का हाथी बंधन में बँध जाने पर एक कौर भी भोजन नहीं करता है, सिर्फ हाथियों से भरे अपने पुराने वन को ही याद करता है।

माता-पिता की सेवा : सर्वश्रेष्ठ सेवा
किसी ब्राह्मण के चार पुत्रों की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक धनी ब्राह्मण रहता था। उसके चार पुत्र थे। जब वह बूढ़ा होने लगा तब उसकी पत्नी का देहान्त हो गया। अपने बच्चों के कहने से उसने अपनी सारी सम्पत्ति उनमें बाँट दी, पर सम्पत्ति मिलने के बाद उसके पुत्र और पुत्र वधुएं उसका तिरस्कार करने लगीं। उसे बहुत दुःख हुआ और उसने शास्ता को अपना दुखड़ा सुनाया।

शास्ता ने उसे कुछ गाथाएं याद कर लेने के लिए कहा और समझाया कि जब ब्राह्मण समाज बैठा हो और उसमें उसके चारों पुत्र भी बैठे हों तब वह इन गाथाओं को सुनाए। उसने वैसा ही किया जैसा शास्ता ने समझाया था। गाथाओं का संदेश था, "जिनके जन्म पर हमने हर्ष मनाया था, जिनकी सदैव उन्नति चाहते रहे, उन्हीं पुत्रों ने अपनी पत्नियों के बहकावे में आकर हमें घर से उसी प्रकार बाहर निकाल दिया जैसे कुत्ता सूअर को घर से बाहर निकाल देता है। जिनके जन्म के लिए हमने देवताओं से मिन्नतें माँगी, जीवन पर्यन्त जिन्हें पुत्र कहकर पुकारा, वे आज राक्षस रूप बन मेरे वृद्ध होने पर मुझे घर से बाहर खदेड़ रहे हैं। जैसे बूढ़ा होने पर लोग घोड़े को पर्याप्त मात्रा में घास नहीं देते, उसी प्रकार बालकों का पिता होने पर भी मुझे भिक्षाटन से जीवन यापन करना पड़ता है।"

गाथा सुनते ही चारों पुत्र पिता के पैरों पर गिर पड़े और माफ कर देने के लिए कहा। वृद्ध पिता ने पुत्रों को माफ कर दिया। अब वे पिता की सेवा करने लगे। एक दिन पुत्रों ने शास्ता को भोजन-दान के लिए आमंत्रित किया और भोजनोपरान्त उन्हें बताया कि अब वे हृदय से पिता की सेवा कर रहे थे। बुद्ध ने उन्हें समझाया, "ऐसा कर तुम अपना ही कल्याण कर रहे हो। पुराने पंडितों ने भी माता-पिता की सेवा करना पुत्र का कर्त्तव्य बताया है।" इसके बाद उन्होंने धनपाल नामक हाथी की कथा सुनाई।

काशीराज के गजशिक्षक द्वारा पकड़े जाने पर उस हाथी को सुसज्जित हाथीशाला ले जाया गया। वहाँ वह राजा द्वारा लाए गए स्वादिष्ट भोजन का एक कौर भी नहीं लेता था। वह 'मुझे केवल मेरा वास स्थान नागवन ही अच्छा लगता है'- यही सोचता था, मात्र इसी का स्मरण करता था। वह सोचता, "मेरी माता पुत्र वियोग में तड़प रही होगी। माता-पिता की सेवा करना मेरा प्रथम कर्त्तव्य था जिसे करने में मैं असमर्थ हूँ। यह धर्म तो सिर्फ नागवन में ही रहकर सम्पादित किया जा सकता था। तो फिर मेरा अकेला भोजन करना कैसे उचित कहा जा सकता है ? " यह शास्ता के किसी पूर्व जन्म की कथा थी। शास्ता ही वह गजराज थे। लोगों ने इसे सुना तो उनकी आँखों से आँसू की धारा बह निकली। लोगों का हृदय द्रवित हो गया।
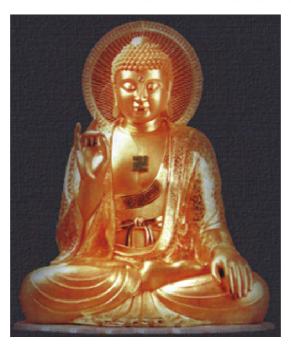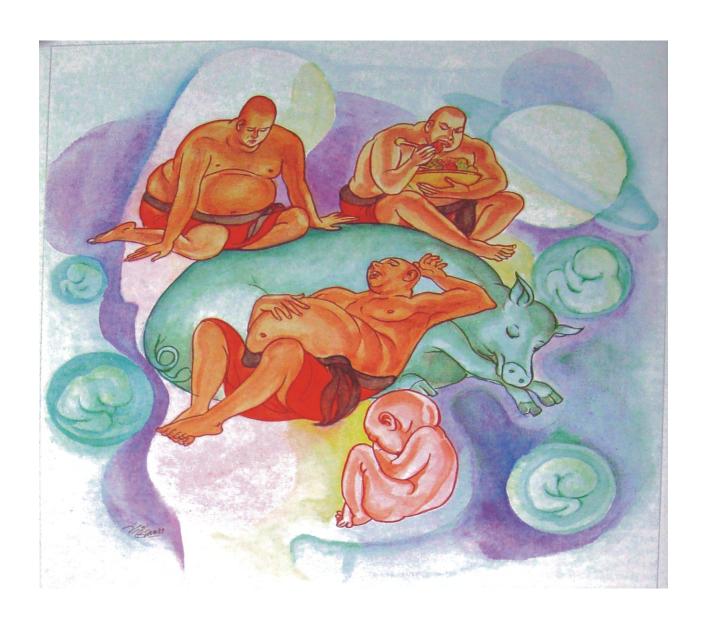
गाथा: मिद्धी यदा होति महग्घसो च, निद्दायिता सम्परिवत्तसायी।
महावराहोव निवापपुट्ठो, पुनप्पुनं गब्भमुपेति मन्दो।। 325।।

अर्थः आलसी आदमी अधिक खाने वाला हो जाता है, निद्रा अभिभूत होकर करवट बदल-बदल कर सोने की चेष्टा करता है, वह दाना खाकर पुष्ट हुए मोटे सूअर के समान होता है। वह मंदबुद्धि बार-बार गर्भ में पड़ता है।

भोजन में भी संयम जरूरी है
कोशलराज की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन कोशलराज ने पेट भरकर खाना खाया और शास्ता का उपदेश सुनने जेतवन विहार पहुँच गया। उसे नींद आने लगी। वह तन्द्रा से व्याकुल था। सरलता से लेटने की सुविधा न मिली। अतः एक ओर बैठ गया। शास्ता ने पूछा, "राजन ! आज भोजन के बाद बिना विश्राम के ही आ गये क्या ? " "हाँ भन्ते ! इसी कारण मुझे आज भोजन के बाद अधिक पीड़ा हो रही है।" शाक्य मुनि ने समझाया "अधिक भोजन करने से इसी प्रकार की पीड़ा होती है।" तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: इदं पुरे चित्तमचारि चारिकं, येनिच्छकं यत्थकामं यथासुखं।
तदज्जहं निग्गहेस्सामि योनिसो, हत्थिप्पभिन्नं विय अंकुसग्गहो।। 326।।

अर्थ: पहले यह मेरा मनमाना चित्त जिधर चाहता था उधर चला जाता था। उसे आज मैं अच्छी तरह वैसे ही वश में लाऊँगा जैसे एक महावत अंकुश से बहके हुए हाथी को वश में लाता है।

मन और बहके हाथी को अंकुश से अनुशासित करना समान है
सानु सामनेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती की एक उपासिका ने बहुत प्रेम से अपने पुत्र को प्रव्रजित किया। उसका नाम सानु सामनेर पड़ा। वह प्रवचन देने में कुशल था। जब भी प्रवचन देता तो कहता, "इन प्रवचनों से मैंने जो भी पुण्य फल प्राप्त किया है, वह मेरे माता-पिता को मिले।" उसकी पूर्व जन्म की माँ इस जन्म में यक्षिणी होकर पैदा हुई थी। उसे भी वह पुण्यफल मिला तथा देवों एवं यक्षों में वह सम्मान पाने लगी। सानु को यह मालूम नहीं था कि उसकी पूर्व जन्म की एक माता यक्षिणी बनकर इस जीवन में पैदा हुई है।

जब सानु के अन्दर इन्द्रियों का विकास हुआ तो उसमें कामवासना जागने लगी। वह अपनी माँ के पास गया और माता से गृहस्थ के कपड़े देने के लिए कहा। उसकी माँ ने उसे बहुत समझाया पर वह नहीं माना। उसकी यक्षिणी माँ यह सब देख रही थी। वह नहीं चाहती थी कि उसका पुत्र गृहस्थी के जंजाल में फँसे। अतः उसकी यक्षिणी माँ ने उसको वश में कर लिया। वह आंगन में जा गिरा, मिर्गी आ गई, मुँह से झाग निकलने लगा, लोटने लगा। हर आदमी ने तरह-तरह से ईलाज किया पर वह ठीक नहीं हुआ। उससे कहा गया कि अगर वह धर्म का पालन करेगा तब ठीक हो जा सकता है, अन्यथा वह बच नहीं पाएगा। "ऐसा पापकर्म कर पक्षियों की तरह उड़कर भागने पर भी तुमको मुक्ति नहीं मिलेगी।" सानु को बात समझ में आ गई और साथ ही साथ उसे होश भी आ गया।

तब इस जन्म की उसकी माँ ने उसे समझाया, "प्रव्रजित के लिए गृहस्थ धर्म में वापस आना गरम राख या नरक में गिरने के समान है। नरक का द्वार खुला है और तुम उसमें गिरना चाहते हो। हम तो तुम्हें गृहस्थ की आग से बचाना चाहते थे। अतः तुम्हें प्रव्रजित किया था, अब तुम जलते हुए घर में वापस आकर जलना चाहते हो। 'भन्ते ! दौड़ो बाहर भागो' यह बात अब हम किसको कहें ? तुम तो फेंके गये सामान की तरह घर में फिर आकर जलना चाहते हो।"

सानु को अपने किये पर बहुत दुःख हुआ। वह विहार वापस आ गया। शाक्य मुनि को यह बात बताई गई। तब उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: अप्पमादरता होथ, सचित्तमनुरक्खथ।
दुग्गा उद्धरथत्तानं, पंके सन्नोव कुञ्जरो।। 327।।

अर्थ: तुम अप्रमाद में स्थित हो जागरूक, सावधान रहो। अपने मन को संभाल कर रखो। पंक (कीचड़) में फँसे हाथी की तरह अपने आप को इस कठिन संसार पंक (राग, क्लेश आदि) से निकालो और निर्वाण की धरती पर स्थित हो जाओ।

पंकमय संसार से अपने को उभारो
बुद्धरेक हाथी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

कोसलराज के पास बुद्धरेक (पावेयक) नाम का एक महा बलवान हाथी था। उसके साथ राजा ने अभी तक युद्ध में कभी भी मुँहकी नहीं खाई थी। कोई भी धन देकर बहुत सारे राजा-महाराजा उसे खरीदना चाहते थे पर वह राजा को अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा था। वह किसी भी कीमत पर उसे बेचने को तैयार नहीं था।

कुदरत का नियम ! हाथी बूढ़ा हुआ। उसकी शक्ति क्षीण हो गई। अब वह शक्तिशाली नहीं रहा। एक दिन वह तालाब में स्नान करने गया और दलदल में फंस गया। वह इतना कमजोर हो गया था कि बहुत परिश्रम करने पर भी अपने को कीचड़ से बाहर नहीं निकाल सका। राजा ने भी पूरा प्रयत्न करवाया, पर वह कीचड़ में ही फँसा रहा। लगता था कि अब हाथी कीचड़ में ही मर जाएगा। किसी को कोई युक्ति नहीं सूझ रही थी। अचानक राजा को पावेयक के पुराने महावत की याद आ गई। उसने उसे बुला लिया। शायद वह कुछ कर सके। महावत भी बूढ़ा हो चुका था। त्रिरत्न की शरण में चला गया था। उसने हाथी को देखा, परिस्थिति समझी और उसे एक युक्ति याद आई। राजा से कहकर उस युक्ति को मूर्तरूप दिया।

पास में ही रण भेरी बजाने का प्रबंध किया गया। युद्ध के नगाड़े बजने लगे। दुन्दुभियाँ भी बज उठीं। हाथी को लगा कि युद्ध का समय आ गया है। वह भूल गया कि वह बूढ़ा हो गया है तथा शरीर से कमजोर है। अपनी पूरी शक्ति लगायी और एक ही झटके में कीचड़ से बाहर आ गया। बाहर आते ही वह चिंघाड़ने लगा।

बात खतम हो गई। भिक्षुओं को इस बात का पता चला तो उन्होंने शाक्य-मुनि के सामने यह सारी बात बताई।

शास्ता ने उन्हें समझाया, "हाथी ने सांसारिक कीचड़ से अपनी पूरी शक्ति लगाकर अपना उद्धार किया। तुम भी क्लेशों के दलदल में फँसे हुए हो, दुःख की जंजीरों में जकड़े हुए हो। अपनी पूरी शक्ति लगाकर, सूक्ष्म ध्यान-साधना के द्वारा अपना उद्धार और कल्याण करो।"

ऐसा कहते हुए तथागत ने इस गाथा के माध्यम से यह उपदेश दिया।
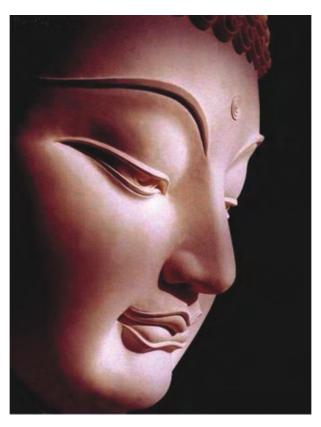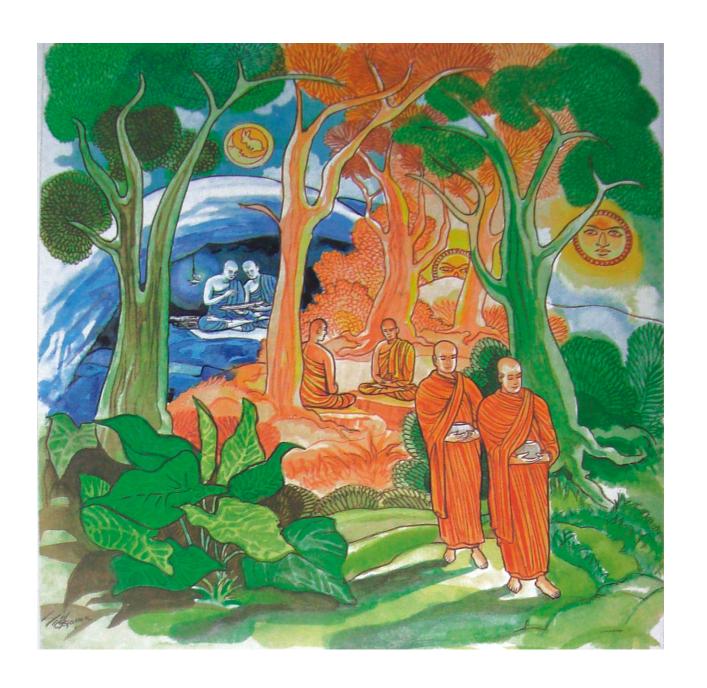
गाथा: सचे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय्य सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा।। 328।।

अर्थ: यदि किसी को साथ चलने के लिए परिपक्व बुद्धि वाला सद्‌चरित्र, बुद्धिमान साथी मिल जाए तो उसे सारी परेशानियों को ताक पर रखकर प्रसन्नचित और स्मृतिमान होकर उसके साथ विचरण करना चाहिए।

परिपक्व बुद्धि वाला : सर्वश्रेष्ठ सहयात्री
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : पारिलेयक

कौसाम्बी में एक बार तथागत ने विहार त्याग दिया क्योंकि भिक्षुगण आपस में कलह में भिड़ गए। शास्ता ने उन्हें बहुत समझाया पर उन्होंने अपना कलह शांत नहीं किया। वर्षाकाल था, शाक्य मुनि विहार छोड़कर पालिलय्येका के उपवन में रक्खित गुफा में चले गए। वहाँ नागराज (हाथी) परम श्रद्धा से उनकी सेवा करता रहा। नागराज उनके लिए फल, फूल, जल आदि लाया करता था। "युग्म वर्ग" की गाथा 6 में भी इसका वृतान्त आ चुका है।

वह हाथी वन में अपने दल-बल के साथ रहता था। स्नान करता था। हथिनियाँ उससे स्पर्श सुख प्राप्त करती थीं, उसके आगे पीछे रहती थीं, साथ-साथ चलती थीं। उसे सभी प्रकार का सुख प्राप्त था पर वह जीवन से पूरी तरह ऊब चुका था। वह एकान्त चाहता था। अत: विचार करने लगा, " इस समूह के साथ इस प्रकार विहार-विचरण करने में मुझे कष्ट होता है। क्यों न मैं इन हाथियों के झुंड को छोड़कर अकेला ही विचरण किया करूँ ?" यह विचार कर उस हस्तिसमूह को छोड़ वह वन में अकेला ही रहने लगा, एकाकी जीवन व्यतीत करने लगा।
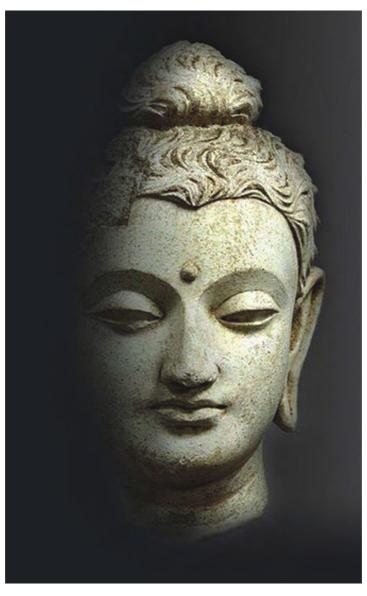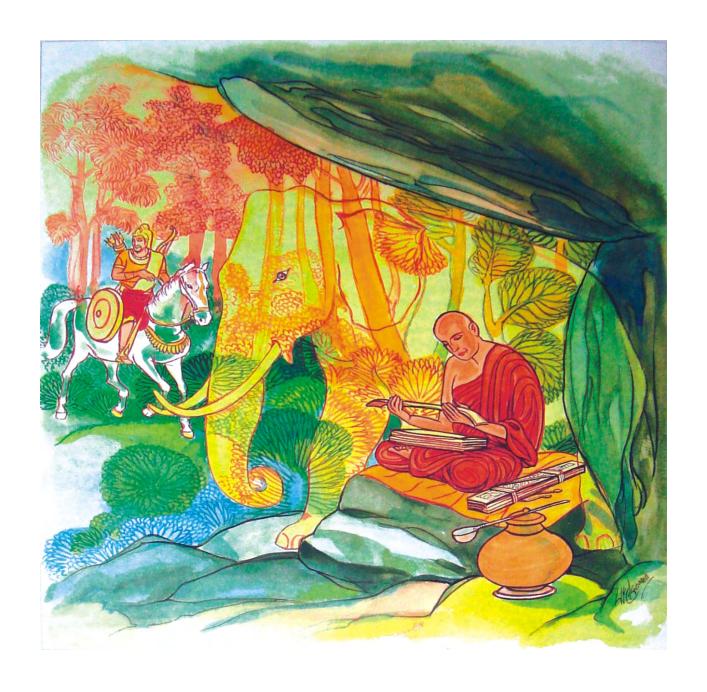
गाथा: नो चे लभेथ निपकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरं।
राजाव रट्ठं विजितं पहाय, एको चरे मातंगरञ्ञेव नागो।। 329।।

अर्थ: यदि किसी को साथ चलने के लिए परिपक्व बुद्धि वाला सद्‌चरित्र, बुद्धिमान साथी न मिले, तो जैसे पराजित राष्ट्र को छोड़कर राजा या जंगल में हाथी अकेला विचरता है, उसी तरह अकेला विचरे।

कब अकेला विचरें ?
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

हस्तिराज तथागत की सेवा किया करता था, यह बात चारों तरफ फैल गई थी। अनाथपिंडिक, विशाखा आदि को भीतर से यह बात कचोटती थी कि वे बुद्ध की सेवा नहीं कर पा रहे थे। अतः उन्होंने भन्ते आनन्द से आग्रह किया, "भन्ते ! बहुत दिन हो गए, शास्ता के दर्शन कराइये।" इस बीच इधर-उधर से पाँच सौ भिक्षु भी वर्षावास के बाद आ गए। वे भी आग्रह करने लगे कि शास्ता के पास ले चलिए। भन्ते आनन्द उन भिक्षुओं को साथ लेकर जंगल की बाहरी सीमा पर पहुँचे। उन्हें लगा कि शास्ता तीन महीनों से जंगल में अकेले रह रहे हैं तथा एकाएक इतने लोगों की भीड़ लेकर जाना उचित नहीं होगा। अतः बाकी लोगों को जंगल के बाहर ही छोड़कर आनन्द अकेले ही शास्ता के सम्मुख पहुँचे। पारिलेयक भन्ते आनन्द को देखते ही उनकी ओर दौड़ा। उसे आगे बढ़ते हुए देख शास्ता ने उसे रोका। उससे कहा, "पारिलेयक ! रुको, पीछे हटो, इन्हें आने दो ये अपने आदमी हैं।" तब गजराज ने भन्ते आनन्द का भिक्षापात्र लेना चाहा पर उन्होंने अपना भिक्षापात्र उसे नहीं दिया।

भन्ते आनन्द ने शास्ता को प्रणाम किया और एक ओर बैठ गए। तब शास्ता ने पूछा, "अकेले ही आए हो, आनन्द ? " "नहीं भन्ते ! और भी भिक्षु तथा अनाथपिंडिक और विशाखा भी साथ-साथ आये हैं।" "वे कहाँ हैं ? " "भन्ते ! आपकी मनःस्थिति की जानकारी नहीं थी। अतः उन्हें साथ नहीं लाया हूँ। उन्हें वन के बाहर ही छोड़ कर आया हूँ।" "उन्हें भी बुला लो।"
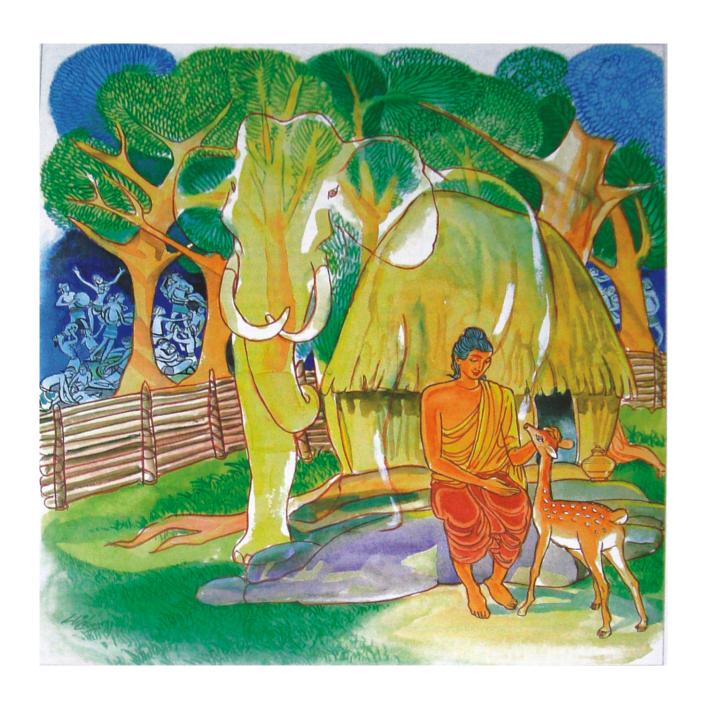
गाथा: एकस्स चरितं सेय्यो, नत्थि बाले सहायता।
एको चरे न च पापानि कयिरा, अप्पोस्सुक्को मातंगरञ्ञेव नागो।। 330।।

अर्थ: अकेला विचरना अच्छा है पर मूर्ख की मित्रता अच्छी नहीं होती।
हस्तिवन में हाथी के समान अनासक्त होकर अकेला ही विचरण करे और पाप न करे।

अनासक्त हो, अकेले ही विचरें
पाँच सौ दिशावासी भिक्षुओं की कथा

स्थान : पारिलेयक

भिक्षुगण आये और उन्होंने सस्वर कहा, "भन्ते ! आप राजमहल में रहने वाले राजकुमार थे। शरीर से इतने सुकुमार और इन तीन महीनों के वर्षावास में आप अकेले रहे। निश्चय ही आपको अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा होगा। आपको तो मुँह धोने के लिए पानी देने वाला भी कोई नहीं था।" बुद्ध ने समझाया, "ऐसा मत कहो भिक्षुगण ! पारिलेयक हाथी ने मेरी सभी प्रकार से सेवा की है। अगर ऐसे मित्र का साथ हो तो एकान्तवास भी आनन्ददायक हो जाता है। अगर ऐसा मित्र न मिले तो एकान्त में अकेला रहना ही अच्छा होता है।"

यदि किसी बुद्धिमान व्यक्ति का साथ हो तो निश्चिन्त हो उस व्यक्ति के साथ स्मृतिवान और प्रसन्न होकर चलना चाहिए। यदि अनुकूल बुद्धि वाला न मिले तो पराजित राजा की तरह पराजित राज्य को छोड़कर हस्तिराज की तरह अकेला ही रहे। उच्चकुलीन पराजित राजा यह सोचेगा, 'इस राज्य में तो विपत्तियाँ ही विपत्तियाँ हैं, अतः ऐसे राज्य से मुझे क्या लाभ मिलेगा ?' ऐसा सोचकर वह उस राज्य को छोड़कर किसी विशाल वन में प्रवेश कर जायेगा और प्रव्रजित होकर जंगल में अकेला ही वास करेगा।"

"भिक्षु को भी उस हाथी की तरह ही होना चाहिए। जैसे वह सांसारिक चीजों में अनुत्सुक होता है, एक स्थान पर नहीं रहता है और इच्छानुसार विचरण करता है, साधक भिक्षु को भी उसी प्रकार एकाकी विचरण करना चाहिए। उसे थोड़ा भी पाप नहीं करना चाहिए। तुम्हें अगर कोई सही मित्र नहीं मिलता है तो तुम्हें अकेले ही विचरण करना चाहिए।"

ऐसा कहकर उन्होंने ये तीनों गाथाएं कहीं।

गाथा: अत्थम्हि जातम्हि सुखा सहाया, तुट्ठी सुखा या इतरीतरेन।
पुञ्ञं सुखं जीवितसंखयम्हि, सब्बस्स दुक्खस्स सुखं पहानं।। 331।।

अर्थ: काम पड़ने पर मित्रों का होना सुखदायी है। थोड़ा या अधिक जो कुछ भी मिल जाए उसी से संतुष्ट रहना भी सुखदायी है। जीवन में किया गया पुण्य मृत्यु के उपरांत सुखदायी है। पर सबसे सुखदायी है- सारे दु:खों का नाश।

सबसे सुखदायी : सारे दु:खों का नाश
मार की कथा

स्थान : हिमालय पर्वत

उन दिनों शाक्य मुनि हिमालय की एक अरण्य कुटी में वास कर रहे थे। उस काल के राजा अपनी प्रजा को कठोर दंड देकर राज्य किया करते थे। दया, करुणा नहीं दिखाते थे। कठोर दंड की राजविधि और प्रजा के कष्ट का विचार कर करुणामय बुद्ध ने सोचा, "क्या बिना किसी को दंड दिये या बिना किसी को दंड दिलवाये, बिना किसी पर विजय प्राप्त किये या बिना किसी को विजय दिलवाये शासन चलाया जा सकता है ? क्या राजा ऐसा कानून नहीं बना सकता जिससे उसकी न्यायप्रियता भी दिखे और वह किसी को कष्ट भी न दे ? "

मार ने शास्ता को इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए देखा। उनके चिंतन को देख दुष्ट मार के मन में आया, "लगता है श्रमण गौतम प्रजा पर राज्य करना चाहते हैं। राजकाज के विषय में सोचना प्रमाद का ही रूप है। अगर ये प्रमाद करते हैं तो निश्चय ही मैं इन्हें साधना से गिरा दूँगा। अच्छा होगा कि मैं इन्हें प्रोत्साहित करूँ ताकि इनके मन में राज्य करने की इच्छा जागृत रहे।" ऐसा विचार कर, शास्ता के पास आकर मार ने बुद्ध से कहा, "हाँ भन्ते ! बिना हिंसा किये या बिना हिंसा कराये, बिना किसी को जीते या जिताये, बिना किसी को चिंता में डाले या डलवाये आप धर्मपूर्वक राज्य कर सकते हैं।"
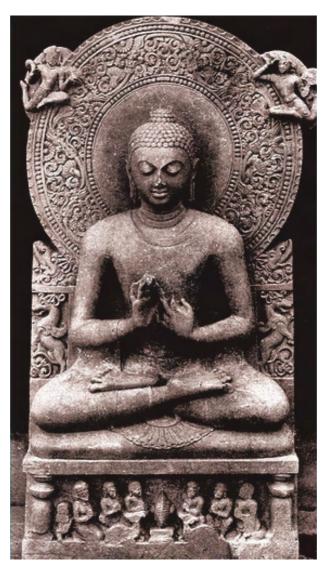
गाथा: सुखा मत्तेय्यता लोके, अथो पेत्तेय्यता सुखा।
सुखा सामञ्ञता लोके, अथो ब्रह्मञ्ञता सुखा।। 332।।

अर्थ: संसार में माता की सेवा करना सुखदायी है और उसी तरह संसार में पिता की सेना करना भी सुखदायी है। संसार में भिक्षु (श्रमण, संन्यासी) की सेवा करना सुखदायी है और सुखदायी है निष्पाप होना (ब्राह्मणत्व प्राप्त करना)।

सबसे सुखदायी : निष्पाप होना
मार की कथा

शास्ता ने यह सब सुना। वे समझ गये कि मार किस उद्देश्य से उन्हें यह बात कह रहा है। अतः उन्होंने उससे कहा, "दुष्ट मार ! तूने मुझे क्या समझ रखा है जो इस प्रकार की बात करने का दु:साहस कर रहा है ? तेरी सोच दूसरी है और मेरी दूसरी। पापी ! मुझे तेरी सलाह नहीं चाहिए।" फिर भी मार ने शाक्य-मुनि से कहा, "भन्ते ! आप को ऐसी ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त है कि आप चाहें तो पूरा का पूरा हिमालय पर्वत भी स्वर्णिम हो सकता है। इससे अपार धन मिलेगा और मैं सारी जरूरतें पूरी कर दूँगा। साथ ही आप धर्मपूर्वक राज्य करते रहेंगे।"

गाथा: सुखं याव जरा सीलं, सुखा सद्धा पतिट्ठिता।
सुखा पञ्ञाय पटिलाभो, पापानं अकरणं सुखं।। 333।।

अर्थ: बुढ़ापे तक शील का पालन सुखदायी है, अचल श्रद्धा सुखदायी है, प्रज्ञा ज्ञान की प्राप्ति सुखदायी है और सुखदायी है पापों का नहीं करना।

क्या सुखदायी है ?
मार की कथा

यह सुनकर तथागत ने मार को समझाया, "हे दुष्ट ! तुझे समझ में नहीं आएगा कि हिमालय बराबर पूरा सोना या चाँदी मिल जाए तब भी लोगों की तृष्णा तृप्त नहीं होती। विद्वान लोग यह सोच-समझकर ही आचरण करते हैं। साथ ही जिसने जान लिया है कि दु:खों का स्रोत क्या है, वह फिर उन दु:खों के स्रोत- कामभोगों की ओर क्यों आकर्षित होगा ? सांसारिक लाभ तो जकड़ने वाली बेड़ियाँ हैं। बुद्धिमान को उनमें आसक्त नहीं होना चाहिए बल्कि उसे इन्हें त्याग देने का प्रयास करना चाहिए।"

शास्ता ने स्पष्ट करते हुए बताया, "मार ! तेरा मार्ग अलग है और मेरा मार्ग अलग। तेरी सोच अलग है और मेरी सोच अलग। अत: तेरा और मेरा मिलन संभव नहीं है।"

ऐसा कहते हुए शाक्य मुनि ने ये गाथायें कहीं।

DHAMMAPADA
NAGA VAGGA

तृष्णा जाल से छुटकारा
धम्मपद
तन्हा वर्ग
गाथा और कथा
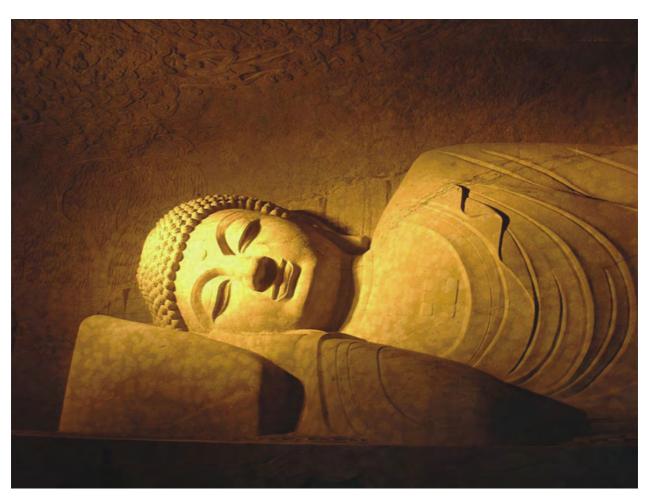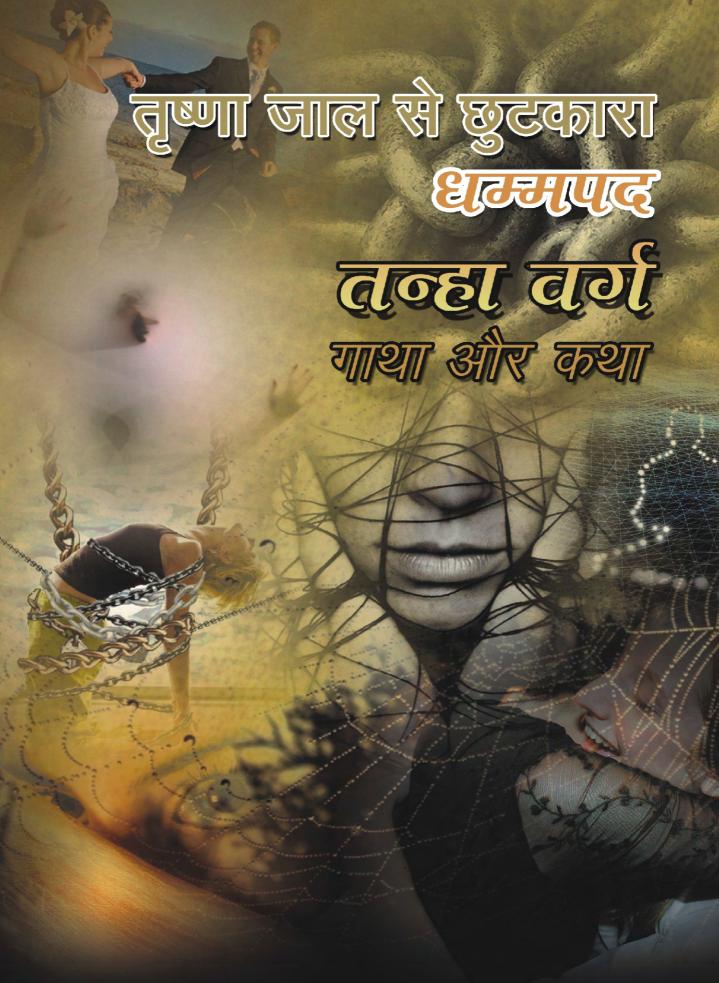
तृष्णा जाल से छुटकारा

धम्मपद

तन्हा वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

तन्हा वर्ग

गाथा: मनुजस्स पमत्तचारिनो, तण्हा वड्ढति मालुवा विय।
सो प्लवती हुरा हुरं, फलमिच्छंव वनस्मि वानरो।। 334।।

अर्थ: प्रमत्त होकर आचरण करने वाले आदमी की तृष्णा मालुआ लता की तरह बढ़ती है। वन में फल की चाह में बंदर जैसे एक डाली से दूसरी डाली पर कूदता रहता है, वैसे ही इंसान संसार के इस भवसागर में एक भव से दूसरे भव में भटकता रहता है।

संसार के भवसागर में बंदर की तरह मत कूदो
कपिल मछली की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन के पास अचिरावती नदी का किनारा। एक दिन केवटों के लड़के 'नदी में मछली पकड़ेंगे' यह सोचकर नदी में जाल फेंकने लगे। उनकी जाल में सुवर्ण रंग वाली किन्तु मुँह से दुर्गन्ध निकालने वाली एक सुनहरी मछली फँस गई। 'आज हमने पहली बार मछली मारना शुरू किया और इतनी सुन्दर मछली पकड़ी, आज इसे राजा को दिखायेंगे और राजा से पुरस्कार पायेंगे' यह सोचकर वे उस मछली को राजा के पास ले गए। राजा ने मछली देख कर कहा, "इस सुवर्ण और दुर्गन्ध का रहस्य न तो तुम ढूँढ़ पाओगे और न मैं। अतः इसे बुद्ध के पास ले चलते हैं।"

शाम का समय। जेतवन का बौद्ध विहार। सभी भिक्षु शास्ता के सामने अर्द्धवृत्ताकार बैठे हैं। वहीं राजा और उनके साथ उनका समूह पधारता है। सभी शास्ता को सादर प्रणाम कर वहीं बैठ जाते हैं। मछली मुँह खोलती है और सारा जेतवन दुर्गन्ध से भर जाता है। सभी शाक्य मुनि से आग्रह करते हैं कि सुवर्ण और दुर्गन्ध का रहस्य खोलें।
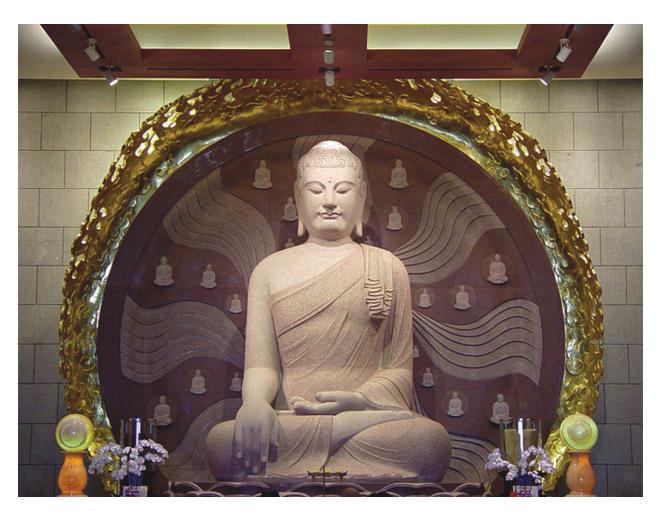
गाथा: यं एसा सहते जम्मी, तण्हा लोके विसत्तिका।
सोका तस्स पवड्ढन्ति, अभिवट्ठंव बीरणं।। 335।।

अर्थ: इस संसार में निरन्तर जन्म लेने की यह विषमयी तृष्णा जिसे अपने वश में कर लेती है उसके दु:ख-शोक उसी प्रकार बढ़ने लगते हैं जैसा वर्षाकाल में बीरण नाम का जंगली घास बढ़ता रहता है।

दु:ख-शोक का कारण: विषमयी तृष्णा
कपिल मछली की कथा

शास्ता कहते हैं 'चलो चलते हैं कस्यप बुद्ध के काल में और तब इस मछली का रहस्य खुलता है। उच्चकुल में दो भाइयों का जन्म हुआ। बड़े भाई का नाम था- स्वागत तथा छोटे भाई का कपिल। माता का नाम साधिनी और छोटी बहन का नाम तापना। चारों ने प्रव्रज्या ली। एक दिन उन्होंने अपने उपाध्याय से पूछा, "अध्यात्म मार्ग पर प्रगति के कितने मार्ग हैं ? " उपाध्याय ने बताया, "दो मार्ग हैं, पहला मार्ग है शास्त्रों को कंठस्थ करने का तथा दूसरा मार्ग है ध्यान-विपश्यना का।" बड़े भाई ने कहा, "मैं तो ध्यान साधना ही करूँगा।" वह ध्यान-साधना में लीन हो गया और पाँच वर्षों में उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। छोटे भाई ने सोचा, "मेरी उम्र अभी है ही क्या ? मैं अभी शास्त्रों को कंठस्थ कर लेता हूँ। समय आने पर ध्यान-साधना कर लूँगा।" उसने समग्र त्रिपिटक याद कर लिया। अब वह धर्म-प्रवचन देने लगा। उसका सर्वत्र आदर-सत्कार होने लगा।

इस प्रकार पांडित्य प्राप्त कर वह बहुत बड़ा अभिमानी हो गया। अब वह सदोष को निर्दोष और निर्दोष को सदोष बताने लगा। संघ के सदाचारी भिक्षु जब उसे कुछ तर्क और साक्ष्य के आधार पर समझाना चाहते थे तो वह उनकी हँसी उड़ा देता था। उसके बड़े भाई स्वागत स्थविर ने भी उसे समझाने की बहुत चेष्टा की पर वह नहीं माना। वह दो-चार बार समझाकर चुप बैठ गया, "इसका परिणाम बहुत ही बुरा होगा। तुम उस परिणाम की कल्पना भी नहीं कर सकते।" पर वह नहीं माना। अपनी दुर्बुद्धि से दुष्कर्म में लगा रहा।

गाथा: यो चेतं सहते जम्मिं, तण्हं लोके दुरच्चयं।
सोका तम्हा पपतन्ति, उदबिन्दुव पोक्खरा।। 336।।

अर्थ: इस बार-बार जन्म देने वाली दुर्जय तृष्णा को जो संयमी पुरुष परास्त कर देता है, उसके सांसारिक दु:ख वैसे ही झड़ जाते हैं जैसे कमल के पत्ते से जल की बूँदें नीचे गिरकर नष्ट हो जाती हैं।

तृष्णा की पराजय: दु:खों का अंत
कपिल मछली की कथा

उसका पतन होता गया। अब वह दुराचारियों की संगत में रहने लगा। एक दिन उपोसथ व्रतधारी भिक्षुओं से कहा, "व्रत का कोई महत्व नहीं है। व्रत रखने से कोई लाभ नहीं होता है।" इस प्रकार उसने कस्सपबुद्ध के संघ को अपार हानि पहुँचाई। अपने कर्म के कारण कपिल मृत्यु के बाद नरक में जा गिरा। माँ तथा बहन ने भी संघ तथा सदाचारी भिक्षुओं की निंदा में कपिल का साथ दिया था। अत: वे भी नरक में जा गिरीं।

उसी समय अनेक चोर चोरी का कुछ सामान लेकर भागे। लोग उनका पीछा कर रहे थे। वे जंगल में भागे तथा एक साधु की कुटिया के सामने रुक गए। साधु से आग्रह किया, "बाबा, किसी प्रकार हमारी रक्षा कीजिए।" बाबा ने समझाया, "बच्चों , शील के अतिरिक्त दुनियाँ में कोई चीज तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकती। तुम शीलपालन का वचन ले लो।" चोरों ने साधु की बात मान ली। साधु ने उपदेश दिया, "अब तुम लोगों ने शीलपालन का वचन दे दिया है। अब प्राणों पर संकट भी आ जाये तो भी तुम शीलव्रत को भंग मत होने देना।" चोरों ने ऐसा ही वचन दिया।
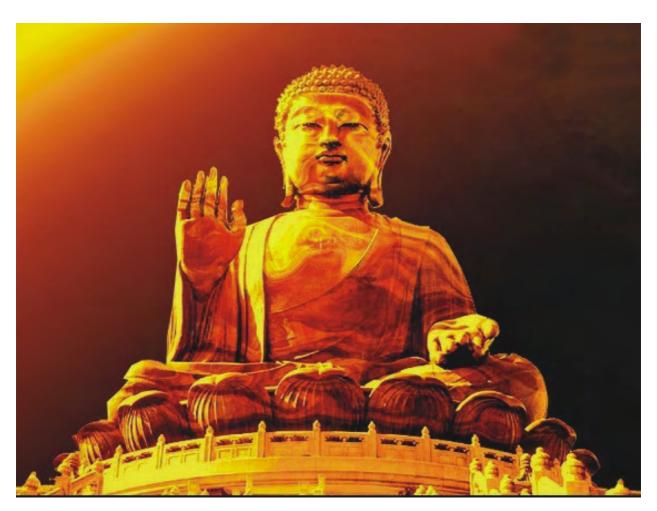
गाथा: तं वो वदामि भद्दं वो, यावन्तेत्थ समागता।
तण्हाय मूलं खणथ, उसीरत्थोव बीरणं।
मा वो नळंव सोतोव, मारो भञ्जि पुनप्पुनं।। 337।।

अर्थ: इसलिए मैं तुम्हें, जितने लोग आये हो, तुम्हें कहता हूँ, तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ- जैसे खस के लिए बड़ी कुदाल लेकर बीरण को खोदते हैं, वैसे ही तुम भी तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो। कहीं ऐसा न हो कि देवपुत्र मार तुम्हें वैसे ही बार-बार उखाड़ता रहे जैसे नदी में उगे हुए सरकंडे को बड़ी तेजी से आता हुआ नदी का पानी उखाड़ देता है।

तृष्णा को जड़ से उखाड़ डालो
कपिल मछली की कथा

थोड़ी देर बाद लोग चोरों को ढूँढ़ते हुए वहाँ पहुँच गए। उन्होंने मार-मारकर उन चोरों की हत्या कर दी। शीलव्रत होने के कारण वे सभी चोर देवलोक गये। उनके प्रधान ने देवपुत्र के रूप में जन्म धारण किया।

शाक्य मुनि ने कहानी आगे बढ़ाई, "देवलोक से निकलने के बाद उन चोरों ने केवट के परिवार में जन्म लिया और वह केवट तुम लोग हो। कपिल ने भी नर्क में पाप भोगकर मछली के रूप में जन्म लिया है। आज जो स्वर्ण, दुर्गन्धयुक्त मछली देख रहे हो, यह वही कपिल है।"

पूरी कहानी सुनकर सभी दुःखी हुए तथा स्तब्ध रह गये। शास्ता ने स्पष्ट किया, "इसने बुद्ध के वचनों को याद कर जो पुण्य कमाया था उसके फलस्वरूप इसने स्वर्णिम शरीर पाया है और भिक्षुओं और संघ के प्रति जो दुर्वचन कहे उसके कारण आज इसके मुँह से दुर्गन्ध आ रही है।"

शास्ता ने मछली से पूछा, "तुम कपिल हो ? " "जी हाँ, भन्ते ! मैं ही कपिल हूँ" "कहाँ से आये हो ? " "नरक से" "तुम्हारा अग्रज स्वागत कहाँ है ? " "वह तो परिनिर्वाण को प्राप्त कर गया" "तुम्हारी माँ तथा बहन कहाँ हैं ? " "दोनों नरक में हैं" "अब तुम कहाँ जाओगे ? " "उसी नरक में वापस जाऊँगा, भन्ते ! " ऐसा कहकर कपिल ने टोकरी के एक किनारे अपना सिर बहुत जोरों से पटक दिया जिससे वह मर गया।

लोग भारी मन से यह सब देख शांत बैठ गए। सोचने लगे, "कर्म की गति कितनी न्यारी होती है।"

शास्ता ने भी उन्हें समयानुकूल ये चार गाथायें सुनाईं।

गाथा: यथापि मूले अनुपद्दवे दळ्हे, छिन्नोपि रूक्खो पुनरेव रूहति।
एवम्पि तणहानुसये अनूहते, निब्बत्तती दुक्खमिदं पुनप्पुनं।।338।।

अर्थ: जैसे जड़ के पूरी तरह नष्ट नहीं होने तथा उसके मजबूत बने रहने से कटा हुआ पेड़ बार-बार उग आता है, उसी प्रकार तृष्णा के जड़ से समाप्त न होने से यह दु:ख बार-बार पैदा होता रहता है।

तृष्णा को जड़ से उखाड़े बिना कल्याण नहीं है
सूअर की बच्ची की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि राजगृह में भिक्षाटन कर रहे थे। रास्ते में एक शूकर की बच्ची को देखा तो मुस्कुरा दिए। प्रत्येक दिन की भाँति आज भी आनन्द थेर उनके साथ थे। उन्होंने शास्ता की मुस्कान देखी और उनके मन में कौतूहल जाग उठा। वे अपने आप को रोक नहीं पाये। शास्ता से इसका कारण पूछा। यह सुनकर तथागत ने उन्हें कुकुसन्ध बुद्ध के काल की कथा सुनाई।

शास्ता ने पूछा, "आनन्द ! इस सूअर की बच्ची को देख रहे हो ? " "हाँ भन्ते ! " "यह कुकुसन्ध बुद्ध के काल में एक मुर्गी थी। उनके विहार के आसपास घूमती रहती थी। वह एक योगाचार्य भिक्षु के स्वाध्याय करते समय, उनके द्वारा उच्चरित शब्दों को सुना करती थी। जब भी पवित्र ग्रंथों का पाठ होता था या धर्म प्रवचन होता था तो उसे भी बड़े ध्यान से सुनती थी। शरीर त्यागने के बाद उसका पुनर्जन्म उर्वरी नाम की एक राजकन्या के रूप में हुआ। एक दिन वह शौचालय में बैठी थी। उसने वहाँ पाखाना में घूमते हुए कीड़ों को देखा। उन्हें देखकर वह चिंतन-मनन करने लगी और उसने प्रथम ध्यान की स्थिति प्राप्त कर ली। राजकुमारी का जीवन बिताने के बाद वह ब्रह्मलोक में प्रकट हुई। वहाँ से च्युत हुई तथा गमनागमन के चक्कर में पड़ी रही और अंततः शूकर योनि में आकर जन्म लिया है। कर्म के फल से मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है ।

गाथा: यस्स छत्तिंसति सोता, मनापसवना भुसा।
बाहा वहन्ति दुद्दिट्ठिं, सङ्कप्पा रागनिस्सिता।। 339।।

अर्थ: जिस आदमी के छत्तीस स्त्रोत मन को अच्छी लगने वाली चीजों की ओर ही ले जाते हों, उस झूठी धारणा वाले आदमी को उसके रागमय संकल्प जलप्रवाह के समान बहाकर ले जाते हैं।

रागमय संकल्प के जलप्रवाह से बचें
सूअर की बच्ची की कथा

आनन्द स्थविर के साथ बहुत सारे भिक्षु यह कथा सुन रहे थे। कथा सुनकर सभी स्थविरों के हृदय में वैराग्य पैदा हो गया। उन सबों की मनःस्थिति जान और सही समय देखकर शाक्य मुनि ने वहीं पर, गली में ही खड़े-खड़े, अच्छे-बुरे कर्मों के सृजन तथा भव-तृष्णा से होने वाली हानि के विषय में बताया। शाक्य मुनि ने समझाया, "सबसे जरूरी है तृष्णा को समूल उखाड़कर फेंक देना। समूल नहीं उखाड़ने से तृष्णा बार-बार जन्म लेने के लिए बाध्य करती है। जिस प्रकार समुद्र का खारा पानी पीने से प्यास नहीं बुझती और बार-बार पीने की इच्छा होती है, उसी प्रकार तृष्णा से बँधा व्यक्ति, जीवन के प्रति आसक्ति से, बार-बार धरती पर जन्म लेता है। अगर वह अच्छे कर्म करता है तो वह उच्च लोक में जाता है। वहाँ अपने कर्मों का हिसाब करता है जैसे कोई आदमी मेले में अपने पैसे खर्च करता है। उच्च लोक में कर्म का हिसाब-किताब समाप्त हो जाने पर वह व्यक्ति फिर संसार में आकर नए कर्मों का सृजन शुरू कर देता है; जैसे पैसे खतम हो जाने पर आदमी मेले से घर वापस आ जाता है। इसी प्रकार आदमी ने अगर बुरे कर्म किये हैं तो फिर वह अधम लोक में जाता है। उच्च लोक की तरह वहाँ भी वह स्थायी रूप से नहीं रह पाता । अपने कर्मों का हिसाब-किताब चुकाकर वह धरती पर एक बार फिर जन्म धारण करता है और इस प्रकार उसकी यात्रा का सिलसिला फिर शुरू हो जाता है क्योंकि उसके अन्दर 'जीने की चाह', 'खारा पानी पीने की तृष्णा' है। इस प्रकार एक बार फिर भले और बुरे कर्म का सृजन प्रारंभ हो जाता है। यह सिलसिला जन्म-जन्मान्तर चलता रहता है।
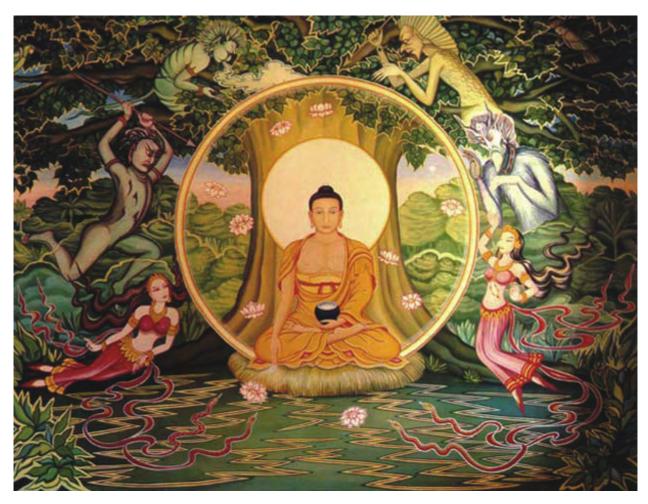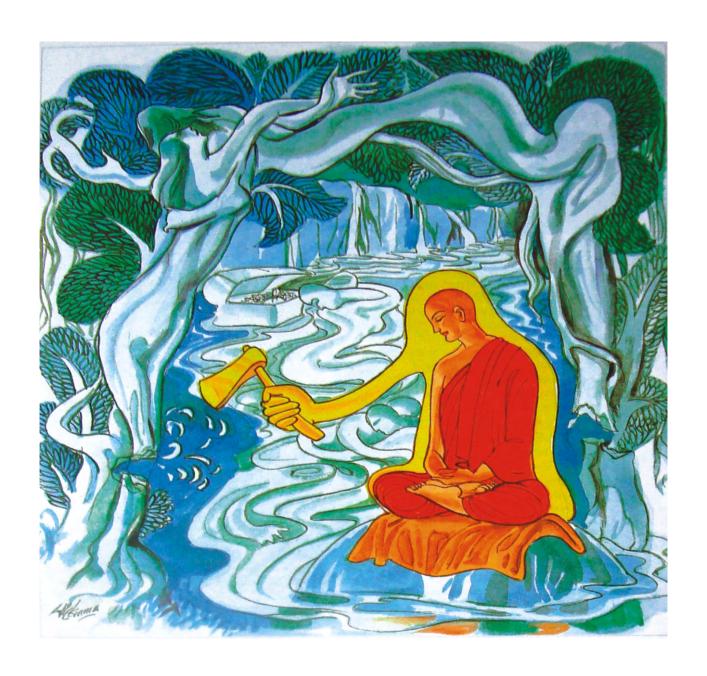
गाथा: सवन्ति सब्बधि सोता, लता उप्पज्ज तिट्ठति।
तञ्च दिस्वा लतं जातं, मूलं पञ्ञाय छिन्दथ।। 340।।

अर्थ: ये स्रोत सभी ओर बहते हैं। जिसके कारण तृष्णारूपी लता अंकुरित रहती है। उस उत्पन्नहुई लता को देखकर प्रज्ञा से उसकी जड़ को काट डालो।

तृष्णा रूपी लता को जड़ से काट डालो
सूअर की बच्ची की कथा

जैसे गंगा अपने स्रोत से निकलकर पूरे रास्ते चलती हुई सागर में मिल जाती है और वहाँ सूर्य की किरणों से गंगा का पानी वाष्प रूप में परिणत हो जाता है, हल्का होने से आकाश की ओर चला जाता है और फिर उड़ता हुआ हिमालय की ओर पहुँचकर पर्वत से टकरा पुनः पानी की बूँदों में बदल नदी का स्वरूप ले लेता है, वैसा ही मनुष्य का जीवन है। पानी की बूँदें जब नदी का स्वरूप ले लेती हैं तो एक बार फिर लगातार चलने वाली यात्रा प्रारंभ हो जाती है, जिसमें न तो कहीं ठहराव है और न कहीं शांति।

मनुष्य के जीवन की कहानी एक चक्र के समान है। यह 'कर्म का पहिया' निरंतर चलता ही जाता है। इसे न तो कोई रोक पाता है और न कोई इसकी गति को घटा या बढ़ा सकता है।

गाथा: सरितानि सिनेहितानि च, सोमनस्सानि भवन्ति जन्तुनो।
ते सातसिता सुखेसिनो, ते वे जातिजरूपगा नरा।। 341।।

अर्थ: ये तृष्णा रूपी नदियाँ प्राणियों के चित्त को अच्छी लगती हैं। इन नदियों के बंधन में बँधे प्राणी भोगों को खोजते हैं और जन्म, बुढ़ापा, रोग और मृत्यु के फेरे में जा पड़ते हैं।

भोग : कष्ट, रोग और मृत्यु के जनक हैं
सूअर की बच्ची की कथा

अतः अगर हमें इस 'पहिये के चलने' को रोकना है तो हमें इसमें गति देने की प्रक्रिया को बंद करना होगा। जीवन-मृत्यु रूपी दीपक की लौ को अगर समाप्त करना है तो सर्वप्रथम उस दीपक में तेल डालना बंद करना होगा। जब तेल डालना बंद कर दिया जाएगा तो फिर जितना तेल पहले से बचा है सिर्फ उसे ही जलने की जरूरत है। अतः अगर हम तेल डालना बंद कर दें और बचे हुए तेल को धैर्यपूर्वक जल जाने दें तो फिर किसी न किसी दिन लौ तो बुझ ही जाएगी। न रहेगा तेल और न जलेगी लौ।

इस प्रकार सबसे आवश्यक है, तृष्णा की समाप्ति। 'तृष्णा को काटो' कह देना आसान है पर उसे काटना इतना आसान नहीं है। वृक्ष की डाली या जड़ के आस पास पेड़ को काट दिया जाये तो पेड़ का अस्तित्व समाप्त नहीं होता। पेड़ के अस्तित्व को अगर मिटाना है तो उसे समूल उखाड़ फेंकना होगा।

टिप्पणी : जिस तरह वृक्ष को ऊपर-ऊपर मात्र काट देने से वह समूल नष्ट नहीं हो जाता है उसी तरह आँख आदि छह द्वारों द्वारा सृजित तृष्णा से, चित्त की प्रवृत्ति को, अन्तर्ज्ञान द्वारा, अगर अलग नहीं किया जाए तो बुढ़ापा, बीमारी, मृत्यु आदि दुःख बार-बार आते ही रहेंगे।
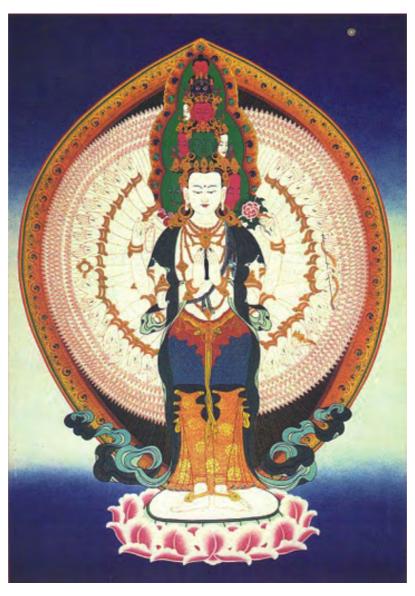
गाथा: तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
संयोजनसङ्गसत्तका, दुक्खमुपेन्ति पुनप्पुनं चिराय।। 342।।

अर्थ: तृष्णा के पीछे दौड़ने वाले प्राणी बँधे हुए खरगोश की तरह एक ही निश्चित स्थान पर चक्कर काटते रहते हैं। मन के बंधनों में फँसे हुए लोग लम्बे समय तक बार-बार दु:खभोग के लिए जन्म लेते रहते हैं।

मन के बंधनों को काट उनसे मुक्त हो जाइए
सूअर की बच्ची की कथा

ज्ञान प्राप्ति के छत्तीस स्त्रोत हैं, जिनमें छः आन्तरिक हैं : आँख, स्त्रोत, घ्राण, जिह्वा, काय और मन, तथा छः वाह्य हैं : रूप, सद्ध, गन्ध, रस, फोट्ठब्ब और धम्म। ये सभी काम, भव और विभव के भेद से 6+6=12X3=36 होते हैं। इस प्रकार अट्ठारह आध्यात्मिक तथा अट्ठारह वाह्य स्त्रोत हुए। इन विचार स्त्रोतों से समन्वित यह तृष्णा अपने प्रिय रूप आदि आसक्तियों से जुड़ी रहती है तथा वहाँ क्रमशः बलशाली होती जाती है। इस कारण उसके अन्दर बार-बार मिथ्यादृष्टि उत्पन्न होती है। यह जब बहुत बढ़ जाती है तो साधक का ध्यान और विपश्यना आदि बाधित हो जाते हैं।

कहानी का शेष भाग : वह शूकर पुत्री भी उस शरीर को त्यागकर बर्मा देश में किसी राजकुल में प्रकट हुई। फिर एक के बाद एक अनेक जन्मों में घूमती हुई दुट्ठगामणि राजा के लकुण्टकअतिम्बर नामक मंत्री की पत्नी बनी। उसने अपनी पत्नी को बहुत अच्छी तरह रखा।
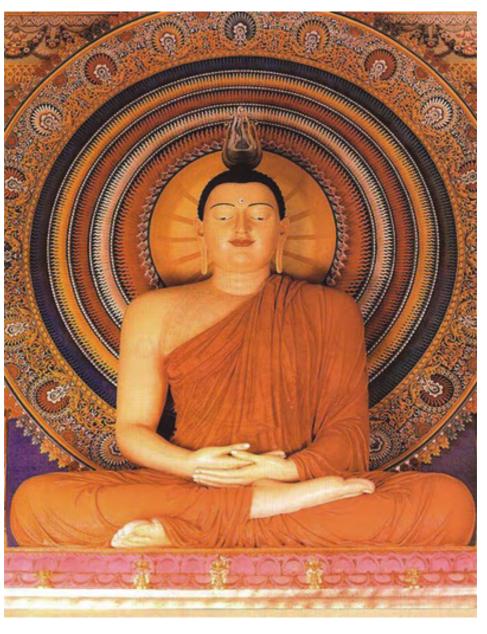
गाथा: तसिणाय पुरक्खता पजा, परिसप्पन्ति ससोव बन्धितो।
तस्मा तसिणं विनोदये, आकङ्खन्त विरागमत्तनो।। 343।।

अर्थ: इस तृष्णा के पीछे लगे प्राणी, बँधे हुए खरगोश की तरह अपने आस पास ही चक्कर लगाते रहते हैं। इसलिए वैराग्य की इच्छा रखने वाले साधक को तृष्णा को दूर करना चाहिए।

वैराग्य की चाह रखते हो ?: तृष्णा को दूर करो
सूअर की बच्ची की कथा

एक दिन महा अनुरुद्ध स्थविर उनके दरवाजे से गुजरे। उन्होंने अपने संग भिक्षुओं से कहा, "आयुष्मानों ! देखो किस प्रकार शूकर पुत्री महामात्य की पत्नी बन गई है। है न आश्चर्य की बात ? " स्थविर की बात सुनकर शूकरपुत्री को वैराग्य पैदा हो गया और पूर्वजन्म की बातें याद आने लगीं। उसने पति से आज्ञा लेकर प्रव्रज्या ले ली। अंत में उसने अर्हत्व भी प्राप्त कर लिया।

उस भिक्षुणी ने अपने परिनिर्वाण से पूर्व भिक्षु संघ से अपने पूर्व जन्मों की चर्चा करते हुए कहा, "तेरह जन्म प्राप्त कर, जीवन में ऊँच-नीच देखकर मुझे संसार से विरक्ति हुई और मैंने प्रव्रज्या लेकर अर्हत्व प्राप्त किया। आप सभी सावधानी (अप्रमादपूर्वक) से अपनी साधना में रत रहें।" ऐसा कहते हुए उसने परिनिर्वाण प्राप्त कर लिया।
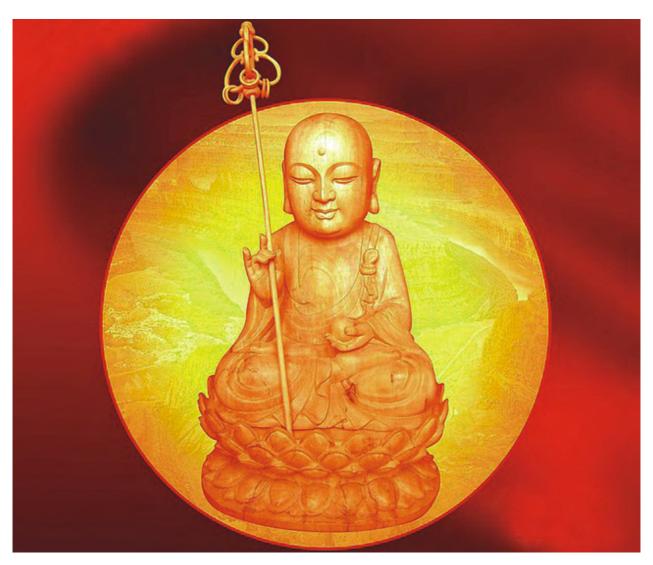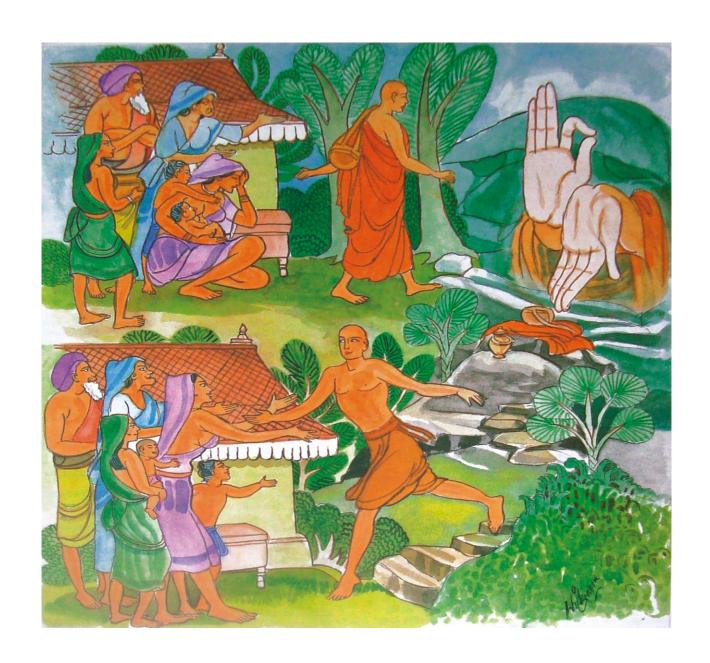
गाथा: यो निब्बनथो वनाधिमुत्तो, वनमुत्तो वनमेव धावति।
तं पुग्गलमेथ परस्सथ, मुत्तो बन्धनमेव धावति।। 344।।

अर्थ: जो तृष्णा से छूट कर, तृष्णामुक्त हो, तृष्णा की ओर ही दौड़ता है उस आदमी को वैसा ही जानना चाहिए जैसे कोई बंधन से मुक्त हुआ व्यक्ति फिर बंधन की ओर भागने लगे।

बंधन से मुक्त हो फिर बंधन की ओर न भागें
विभ्रान्त भिक्षु की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि के अग्रणी शिष्य महाकस्सप थेर का एक शिष्य था। उसने चारों ध्यानों की सिद्धियाँ पा ली। एक बार वह अपने मामा के घर गया और सांसारिक सुख-सुविधाओं को देख उसका मन भिक्षुभाव से उचट गया और वह चीवर छोड़कर गृहस्थ हो गया। लेकिन गृहस्थ-जीवन में वह मेहनती नहीं था। उसे आलसी देख उसके घर वालों ने उसे घर से निकाल दिया। वह काम-काज करना नहीं जानता था, अतः बुरी संगति में फँस गया।

एक दिन वह चोरी करते हुए पकड़ा गया। उसका मामला सुनने के बाद राजा ने उसे फाँसी की सजा सुनाई। जब उसे फाँसी के लिए वधस्थल की ओर ले जाया जा रहा था तब उसकी नजर महाकस्सप पर पड़ी। उस समय महाकस्सप भिक्षाटन हेतु जा रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य को याद दिलाया, "तुम अपने अभ्यस्त कर्मस्थान पर ध्यान केन्द्रित करो।" उसने वैसा ही किया जैसा स्थविर महाकस्सप ने बताया था। इससे उसकी अपनी स्मृति ताजी हो गई। वह साधना में स्थित हो ध्यान के चतुर्थ स्थिति तक पहुँच गया।

वह वध स्थल पहुँचा। पूर्णतः शांत था। उसके चेहरे पर जरा भी भय का भाव नहीं था। इसके विपरीत, उसके चेहरे पर एक अपूर्व आभा दिख रही थी। उसे देखकर जल्लादों को अति आश्चर्य हुआ। उन्होंने उसका वध करने की बजाय इस बारे में राजा को सूचना दी। राजा ने भी उसे जाँचा, परखा और उसे मुक्त कर दिया। वध स्थल पर खड़े लोगों ने यह देखकर हर्ष से खूब तालियाँ बजाईं।

तथागत ने राजा और उस बन्दी के पृष्ठभूमि में यह गाथा कही।
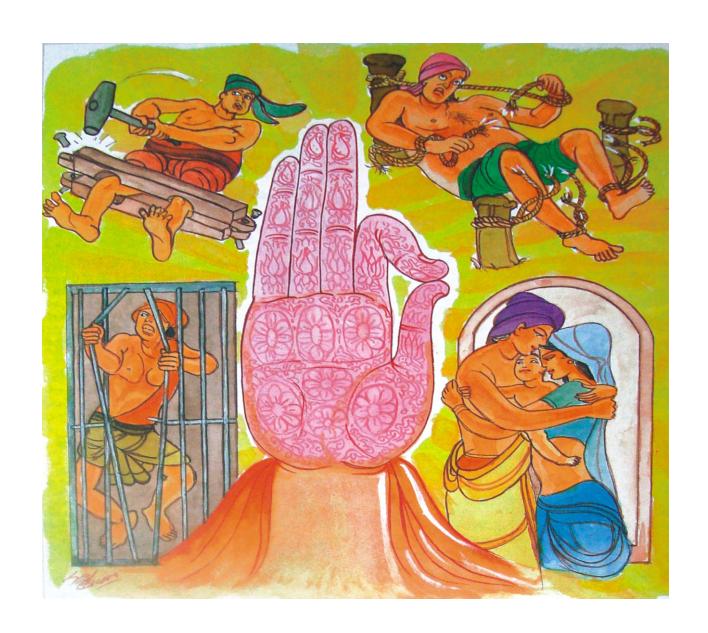
गाथा: न तं दळहं बन्धनमाहु धीरा, यदायसं दारूजपब्बजञ्च।
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।। 345।।

अर्थ: वह बंधन दृढ़बंधन नहीं है जो लोहा, लकड़ी या रस्सी का बना हो। मजबूत बंधन तो है- धन, मणि, आभूषण तथा पुत्र और पत्नी में आसक्ति का होना।

सबसे दृढ़ बंधन क्या है ?
जेल की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

किसी समय कुछ चोरों को चोरी तथा अन्य अपराधों के लिए कोसलराज के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। राजा के आदेश से उन्हें हथकड़ी पहना दी गई, कुछ को रस्सियों और कुछ को लोहे की जंजीरों में जकड़ दिया गया।

बाहर से करीब तीस भिक्षु आये। उन्होंने शाक्य मुनि के दर्शन किए, प्रणाम किया और भिक्षाटन हेतु निकल पड़े। रास्ते में वह कारागार दिखा जिसमें वे चोर रखे गए थे।

शाम हुई। प्रतिदिन की तरह आज भी धर्मचर्या का समय आया। बाहर से आये भिक्षुओं ने निवेदन किया, "भन्ते ! आज भिक्षाटन के समय हमने कुछ चोरों को हथकड़ियों, रस्सी तथा लोहे की जंजीरों में बँधे हुए देखा ताकि वे कहीं भाग न सकें । क्या सबसे मजबूत ये ही बंधन हैं या कोई बंधन इनसे भी अधिक मजबूत होता है ? "

शास्ता ने समझाया, "भिक्षुओं ! ये बंधन कुछ नहीं हैं। धन-दौलत, स्त्री-पुत्र आदि के सांसारिक जाल इन बंधनों की तुलना में सैकड़ों-हजारों गुना अधिक शक्तिशाली होते हैं। इन शक्तिशाली बंधनों को 'तृष्णा' कहते हैं। यह तुम्हारे बताये गए बन्धनों की तुलना में अधिक दृढ़तर एवं स्थिरतर हैं। ऐसे शक्तिशाली बंधनों से मुक्त हो प्राचीन काल में भी लोग, हिमालय पर जा, प्रव्रज्या प्राप्त कर साधना करते रहे हैं।"

भिक्षुओं ने प्राचीन काल की कोई कथा सुनाने के लिए आग्रह किया। तब शाक्य मुनि ने यह कहानी सुनाई।
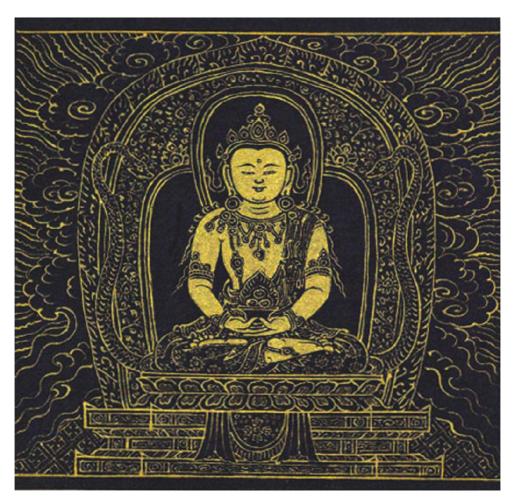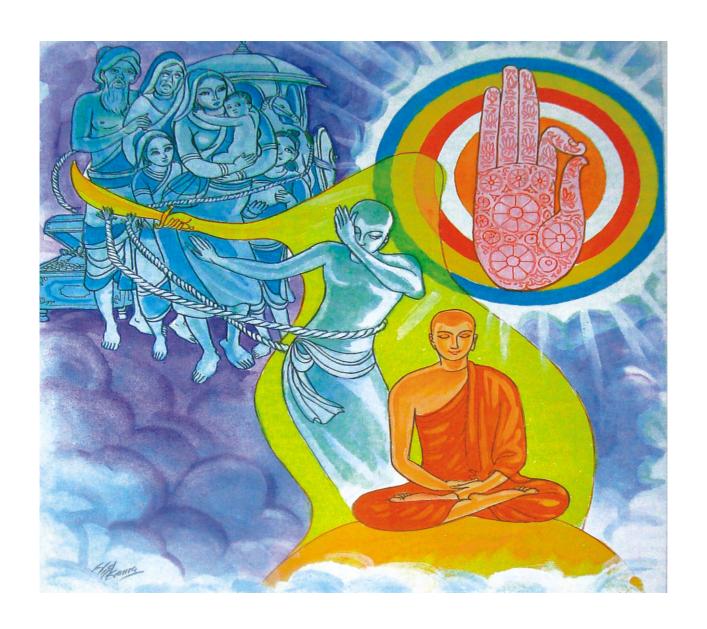
गाथाः एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा, ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं।
एतम्पि छेत्वान परिब्बजन्ति, अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय।। 346।।

अर्थः ज्ञानी जन उस बंधन को दृढ़ कहते हैं जो देखने में तो शिथिल होता है पर अधोगति की ओर ले जाता है और कठिनता से टूटता है। पर ज्ञानी जन उपेक्षारहित हो, काम सुख त्याग कर, इस दृढ़ बंधन को भी ज्ञानी रूपी तलवार से काटकर प्रव्रजित हो जाते हैं।

इस दृढ़ बंधन को ज्ञान रूपी तलवार से काटें
जेल की कथा

प्राचीन काल में जब वाराणसी में ब्रह्मदत्त राजा राज्य करते थे तब बोधिसत्व का जन्म किसी परिवार में हुआ। कुछ समय बाद उनके पिता का देहान्त हो गया और माता अकेली पड़ गई। वह पुत्र का विवाह करना चाहती थी पर पुत्र विवाह करना नहीं चाहता था। माँ ने पुत्र की इच्छा के विरुद्ध उसकी शादी करा दी। शादी के कुछ दिनों बाद पत्नी ने गर्भ धारण कर लिया। इधर बोधिसत्व के मन में वैराग्य जगा और वे संसार त्याग कर संन्यास लेना चाहते थे। अतः उन्होंने अपनी पत्नी के सम्मुख संन्यास लेने का प्रस्ताव रखा। तब पत्नी ने समझाया, "स्वामी ! अभी तो मैंने गर्भधारण ही किया है। संतान का मुँह देख लीजिएगा तब चले जाइएगा।" पति उसकी बात मानकर रुक गया। कुछ समय बाद बोधिसत्व ने अपनी पत्नी से कहा, "तुम्हारी बात मानकर मैं रुक गया । अब तो पुत्र हो गया है, अब मुझे प्रव्रज्या की सहमति दो।" "बच्चा अभी बहुत छोटा है। गोद में माँ का दूध पीता है। थोड़ा बड़ा हो जाये, दूध पीना छोड़कर खाना-पीना शुरू कर दे, घूमने लगे तब चले जाना।" बोधिसत्व को लग गया, "अगर पत्नी की बात मानता रहा तो कभी प्रव्रजित नहीं हो पाऊँगा क्योंकि यह स्त्री कभी प्रव्रज्या की अनुमति नहीं देगी।" अतः एक रात वे धीरे से जब पत्नी सोई हुई थी घर से निकलकर जंगल की ओर जाने लगे। पर रास्ते में रात्रि पहरेदारों ने उन्हें चोर समझकर पकड़ लिया। तब उन्होंने पहरेदारों को बताया, "मैं चोर नहीं हूँ। तुम्हारी तरह गृहस्थ हूँ। प्रव्रज्या धारण करने के लिए घर से निकला हूँ।" इस प्रकार उन राज पहरेदारों को समझा-बुझा कर वे आगे निकल गए और जंगल में प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया। साधना में लीन हो गए और साधना की सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

एक दिन बोधिसत्व के मुँह से अनायास ही निकल गया, "बहुत कठिन था पत्नी और पुत्र के प्रति मोहरूप क्लेश-बंधन का काटना। पर इस कठिन कार्य को मैंने कर ही दिया। बंधन काट ही डाला।"

तथागत ने इस प्रकार बोधिसत्व के पूर्व जन्म की कथा सुनाई। उसके बाद इस संदर्भ में ये दो गाथायें सुनाईं।

गाथा: ये रागरत्तानुपतन्ति सोतं, सयंकतं मक्कटकोव जालं।
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा, अनपेक्खिनो सब्बदुक्खं पहाय।। 347।।

अर्थ: जैसे मकड़ा स्वयं बनाये जाल में फँस जाता है, वैसे ही राग में अनुरक्त लोग स्वयं बनाये तृष्णारूपी प्रवाह में फँस जाते हैं। हाँ, विरक्त और धैर्यवान साधक इस तृष्णाजाल को भी काटकर तथा सभी दु:खों को छोड़कर संसार के प्रति उदासीन (निरपेक्ष) हो जाते हैं।

तृष्णाजाल काट दु:खों से मुक्त हो जायें
खेमा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महाराज बिंबिसार की पटरानी खेमा पूर्व जन्म में पद्मोत्तर बुद्ध के श्रीचरणों में श्रद्धा के फलस्वरूप इस जन्म में वह अति सुन्दर थी। उसका अभिमानी होना स्वाभाविक था। लोगों से सुन रखा था कि बुद्ध रूप-सौन्दर्य को महत्व नहीं देते, अपितु उसकी निंदा ही करते हैं। अत: वह उनके सम्मुख कभी जाना नहीं चाहती थी। राजा बहुत चाहता था कि रानी भी त्रिरत्न के प्रति श्रद्धा रखे। उसने बुद्ध एवं भिक्षुओं को राजमहल में भोजन दान के लिए आमंत्रित किया पर उस समय भी वह बुद्ध की सेवा के लिए नहीं आई।

राजा ने बहुत सोचकर एक युक्ति निकाली। उसे मालूम था कि रानी को संगीत से बहुत प्रेम था। अत: उसने राजमहल के नर्तकों को वेणुवन के प्रशंसात्मक गीत याद कराए। वे जब भी रानी के सामने प्रस्तुत होते, प्रशंसा के गीत गाते। रानी ने एक दिन नर्तकों से पूछा, "तुम अपने गीत में किस उद्यान का वर्णन करते हो ? " नर्तकों ने कहा, "आपके राज्य में ही स्थित वेणुवन का।" तब रानी को लगा, "जिस वेणुवन की इतनी अधिक प्रशंसा हो, वह देखने में तो इससे भी सुन्दर होगा।" उसने राजा के सम्मुख वेणुवन देखने की इच्छा प्रकट कर दी। राजा यही चाहता था।

शास्ता खेमा का मनोभाव जानते थे। अत: जब खेमा वेणुवन आई तो उन्होंने अपनी शक्ति से एक अति सुन्दर नवयुवती का सृजन किया जो उनके पीछे खड़ी होकर उनको पंखा झल रही थी। उस स्त्री को या तो रानी या शास्ता ही देख सकते थे। रानी ने उसका सौन्दर्य देखा तो लगा कि जैसे राजहंसिनी के सामने एक कौआ खड़ा हो। तब शास्ता ने उस नवयुवती का रूप बदलना प्रारंभ किया। वह युवती से जवान, प्रौढ़, बूढ़ी हुई और अंत में मात्र अस्थि-कंकाल के समान दिखने लगी। अब खेमा को रूप-सौन्दर्य की वास्तविकता समझ में आने लगी।

तथागत ने खेमा के मनोभाव को जानकर उससे कहा, "खेमा ! तुमने स्त्री के रूप और सौन्दर्य की सच्चाई देख ली। स्त्री का सौन्दर्यमय शरीर व्याधिग्रस्त होता रहता है, अपवित्र है, दुर्गन्धमय है, चढ़ाव-उतराव वाला है। इसमें विभिन्न स्थानों से मल बहता रहता है। ऐसा शरीर सिर्फ मूर्ख और अविवेकी लोगों को ही प्रिय लग सकता है।"

यह सुनकर खेमा श्रोतापन्न में प्रतिष्ठित हो गई। शास्ता ने आगे समझाया, "सांसारिक प्राणी रागयुक्त होकर, द्वेषमग्न और मोहयुक्त होकर अपनी तृष्णा प्रवाह से मुक्त नहीं हो पाते हैं, बल्कि उसी में फंसे रहते हैं।"

तब शास्ता ने यह गाथा सुनाई। शाक्य मुनि ने राजा से कहा, "महाराज ! खेमा का अब प्रव्रजित या परिनिवृत होने का समय आ गया है।" राजा ने आग्रह किया, " भन्ते ! उसे प्रव्रजित कर लीजिए। अभी परिनिवृत मत होने दीजिए।"

खेमा उसी दिन प्रव्रजित हो गई।

गाथा: मुञ्च पुरे मुञ्च पच्छतो, मज्झे मुञ्च भवस्स पारगू।
सब्बत्थ विमुत्तमानसो, न पुनं जातिजरं उपेहिसि।। 348।।

अर्थ: भूत, भविष्य और वर्त्तमान- तीनों के बंधनों को त्याग दो तथा इस भवसागर को पार कर लो। जब सब ओर से मन को मुक्त कर लोगे तब तुम्हें ये जन्म- जरा आदि पीड़ित नहीं करेंगे।

भूत, भविष्य और वर्तमान : तीनों के बंधन त्याग दो
उग्रसेन की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

राजगृह में प्रतिवर्ष की भाँति नटों के खेल का आयोजन हुआ। नटों में एक नवयुवती भी थी ,जिसे देख नगर श्रेष्ठी का पुत्र, उग्रसेन उस पर मोहित हो गया। माता-पिता के न चाहने पर भी उग्रसेन ने उस युवती से विवाह कर लिया और उस नाट्य मंडली में साथ-साथ रहने लगा। उसे कोई कला नहीं आती थी, अतः सामान आदि ढ़ोने का काम किया करता था। कुछ दिनों बाद उसे एक पुत्र हुआ। उसकी पत्नी अपने बच्चे को गोद में प्यार करते समय कहती, "ओ गाड़ी के रखवाले के पुत्र ! ओ सामान ढोने वाले के पुत्र !" उग्रसेन को लग गया कि उसकी पत्नी उसका मजाक उड़ा रही थी। अतः वह अपने ससुर के पास गया, उनसे प्रार्थना की और परिश्रम कर उसने भी बहुत सारी नटकलाएं सीख लीं।

एक बार नटसमूह फिर राजगृह आया। घोषणा की गई "आज से सातवें दिन उग्रसेन अपने नटी की कला का प्रदर्शन करेंगे।" सातवें दिन उसने अपनी कला का प्रदर्शन करना प्रारंभ किया। पर जनता उसे देखने नहीं आई क्योंकि वह दूसरी ओर बुद्ध के प्रवचनों को सुनने चली गई। उसने सात बार अपने करतब दिखाए पर जनता बुद्ध वचनों से ही जुड़ी रही। वह मन से उदास होने लगा।

शास्ता ने उसका मनोभाव जान लिया। उन्होंने महामोग्लान को बुलाकर कहा, "मोग्लान ! जाओ और उग्रसेन से कहो कि वह अपनी कला का प्रदर्शन करे।" मोग्गलान के कहने पर उसने एक के बाद एक अनेक प्रदर्शन किये। लोग यह देखकर बहुत खुश हुए। शास्ता ने भी उसके करतबों को देखा।

शास्ता ने उग्रसेन को समझाया, "रस्सी पर खेल खेलना बहुत आसान है पर जीवन का खेल खेलना बहुत कठिन। सीखना है तो जीवन जीने की कला सीखो। समझदार आदमी वही है जो अपने आप को इन स्कन्धों की आसक्ति से बचाता है और जन्म-जन्मान्तर के आवागमन से मुक्त होने की चेष्टा करता है।"

यह कहते हुए शाक्य मुनि ने यह गाथा कही। उग्रसेन ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया और वह एक भिक्षु हो गया।

एक बार धर्मसभा में उग्रसेन स्थविर से भिक्षुओं ने पूछा, "स्थविर ! इतनी ऊँचाई पर करतब दिखाते समय आपको भय नहीं लगता था ? " "नहीं।" भिक्षुओं ने उसकी बात पर विश्वास नहीं किया और शास्ता से शिकायत की कि उग्रसेन झूठ बोलता है। शास्ता ने स्पष्ट किया, "नहीं भिक्षुओं ! उग्रसेन सच बोलता है। उग्रसेन सभी भवबंधनों से मुक्त हो चुका है। ऐसे व्यक्ति को किसी बात का भय नहीं लगता है।" उन्होंने गाथा भी सुनाई, "संसार से सभी प्रकार की आसक्ति त्याग देने वाला व्यक्ति किसी चीज से भयभीत नहीं होता है। वह सारे संसार में उदासीन भाव से विचरण करता है। मैं उसे 'ब्राह्मण' कहता हूँ।"

शिष्यों ने प्रश्न किया, "भन्ते ! किस प्रारब्ध कर्म के कारण उग्रसेन को नटी करना पड़ा ?" शास्ता ने उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाई कि एक बार वाराणसी में बहुत सारे कुलपुत्र काश्यपबुद्ध के चैत्य निर्माण के समय गाड़ी में खाद्य सामग्री भरकर ले जा रहे थे। रास्ते में एक स्थविर मिले। एक पति-पत्नी बैलगाड़ी से नीचे उतरे और भिक्षु को भोजन दान दिया। भोजन देने के बाद पति ने भिक्षु से प्रार्थना की, "भन्ते ! हम लोग भी आपके धर्म के भागी बनें।" भिक्षु अर्हत थे, उन्होंने देख लिया कि आगे चलकर ये दोनों भी अर्हत बनेंगे। अतः वे हँस दिए। स्त्री ने पति से कहा, "स्थविर आपके कथन पर हँस दिए। लगता है हममें से किसी को किसी जन्म में नट कर्म करना पड़ेगा।" "मुझे भी यही लगता है", पति ने कहा।

"यही उनका पूर्वकर्म है। आज दोनों पति-पत्नी अर्हत्व प्राप्त कर चुके हैं।"

गाथा: वितक्कमथितस्सजन्तुनो, तिब्बरागस्ससुभानुपस्सिनो।
भिय्यो तण्हा पवड्ढति, एस खो दळ्हं करोति बन्धनं।। 349।।

अर्थः जिस प्राणी के मन में बहुत संकल्प-विकल्प उठते हैं, जिसके मन में तीव्र राग है, जो सांसारिक वस्तुओं में शुभ ही शुभ देखता है, उसकी तृष्णा पहले की अपेक्षा बढ़ती ही जाती है। वह अपने सांसारिक बंधनों को पहले से अधिक दृढ़ बनाता जाता है।

तृष्णा पर विजय कैसे ?
एक तरुण भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय भिक्षुओं के लिए बने एक शाला में एक प्रव्रजित भिक्षु ने भोजन ग्रहण किया। भोजन के बाद उसे प्यास लगी। वह पानी पीने पास के एक घर में गया जहाँ एक नवयुवती ने उसे पानी पिलाया। उसने ज्योंहि भिक्षु को देखा, वह उस पर आसक्त हो गई। भिक्षु को मोह जाल में फँसाने के लिए उसने प्रस्ताव दिया, "भन्ते ! जब कभी भी पानी पीने की आवश्यकता हो, यहाँ आ जाया कीजिए।" इस प्रकार जब-जब जल की जरूरत पड़ती थी, वह भिक्षु उसके घर आ जाता था। बाद में उसने उसे भोजन के लिए आमंत्रित किया और उसे भोजन देने लगी। एक दिन अपने घर में, अपने समीप बैठाकर भोजन कराया और प्रेमपूर्वक यह वचन बोली, "भन्ते ! इस घर में सभी चीजें उपलब्ध हैं। किसी चीज की कमी नहीं है। पर उनका उपयोग करने वाला नहीं है। वैसा आदमी मिलता कहाँ है ? " इन बातों को सुनकर वह भिक्षु भी उस महिला में आसक्त होने लगा और धर्मसाधना की उपेक्षा करने लगा।

अब उसका मन धर्म-साधना में नहीं लगता था। वह दुबला होने लगा। अन्य भिक्षुओं ने उससे पूछा, "क्या तुम बीमार हो गए हो ? तुम्हारे शरीर की एक-एक धमनी दिखने लगी है।" "नहीं, अब मुझे विहार में रहने की इच्छा नहीं रह गई है। भिक्षु जीवन त्यागना चाहता हूँ।" तब वे भिक्षु उसे उसके उपाध्याय के पास ले गए और उसके उपाध्याय उसे शास्ता के पास ले गए। शास्ता ने पूछा, "क्या सचमुच तुम्हारी धर्म में अरुचि हो गई है ? " "हाँ भन्ते !" "अरे भिक्षु ! अगर तुम मेरे सामने आकर कहते 'मैं स्रोतापन्न हो गया हूँ', 'सकृदागामी या अनागामी होने जा रहा हूँ' तो मैं अधिक संतुष्ट होता। पर ऐसा न कहकर तुम कह रहे हो 'मैं एक स्त्री पर आसक्त हो गया हूँ'। तुम इतना अविवेकपूर्ण काम क्यों कर रहे हो ? कारण क्या है?" "मैं एक स्त्री पर आसक्त हो गया हूँ", भिक्षु ने कहा।

तब शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "अगर उस स्त्री ने तुम्हें अपने जाल में फाँस लिया है तो कोई आश्चर्य नहीं है। उसने पूर्वजन्म में आर्यावर्त्त के सर्वश्रेष्ठ धनुर्धारी पंडित को, क्षणमात्र में आसक्त हुए पुरुष के लिए, मरवा दिया था। भिक्षुओं ने याचना की कि शास्ता वह कहानी सुनावें। तब शास्ता ने उस स्त्री के पूर्व जन्म की कथा सुनाई।

गाथा: वितक्कूपसमेच यो रतो, असुभं भावयते सदा सतो।
एस खो ब्यन्ति काहिति, एस छेच्छति मारबन्धनं।। 350।।

अर्थ: इसके विपरीत जो प्राणी अपने संकल्प-विकल्पों को शांत करने में रत है, सदा जागरुक रहकर सांसारिक वस्तुओं के अशुभ को देख लेता है, वह एक न एक दिन मार के बंधनों को काट ही देगा और निश्चय ही इस तृष्णा का अन्त कर देगा।

तृष्णा जैसे दैत्य से सावधान !
एक तरुण भिक्षु की कथा

पूर्वकाल में चूलधनुर्गह पंडित ने तक्षशिला के एक आचार्य से धर्नुकला सीखी। आचार्य ने उसकी उपलब्धि से संतुष्ट होकर अपनी बेटी का हाथ उसे थमा दिया और वाराणसी के लिए विदा कर दिया। दोनों जब जंगल होकर गुजर रहे थे तो पचास चोरों का एक समूह उनके सामने आ गया और उन पर आक्रमण कर दिया। धनुर्धर पंडित ने अकेले ही उन उनचास चोरों को मार गिराया। अब पचासवें चोर और समूह के मुखिया की बारी थी। उसे मारने के लिए उसने अपनी स्त्री से तलवार माँगी, परन्तु उस स्त्री ने मुखिया को देखा और एक ही क्षण में वह उस पर आसक्त हो गई। अपने पति को तलवार देने के बदले वह तलवार मुखिया को थमा दी। चोर ने पंडित का वध कर दिया पर सोचा, "जो स्त्री एक क्षण में मुझ पर आसक्त हो अपने पति की हत्या करवा सकती है, वह किसी अन्य पर आसक्त होकर मुझे भी मरवा सकती है। अतः ऐसी स्त्री के संग से क्या लाभ ? "

ऐसा विचार कर वह चोर उस स्त्री के साथ नदी के घाट पर पहुँचा। उसने स्त्री से कहा, "तुम यहीं रुको। मैं पहले सामान उस पार पहुँचा देता हूँ तब तुम्हें लेकर जाऊँगा।" ऐसा कहकर वह स्त्री को इस पार छोड़कर चला गया।

झाड़ी से एक सियार की आवाज आई, "हे सुन्दरी ! सुन्दर जाँघों वाली ! न यहाँ नृत्य हो रहा है और न गायन। तू रोने के साथ क्यों हँस रही है ? " "अरे मूर्ख सियार ! तू क्यों चिंता कर रहा है ?" "दूसरों का दोष देखना कितना आसान है और अपना कठिन। तू तो पति और प्रेमी दोनों से बिछड़कर रो रही है।" "हाँ, जो तुम कह रहे हो वह सही है पर आगे मैं अपने पति के पदचिन्हों पर चलूँगी।" "अरे तू क्या चलेगी ? जो मिट्टी की थाली चुरा सकता है, वह काँसे की थाली अवश्य चुरायेगा। पहले भी तूने पाप किया था और तू आगे भी करेगी।"

शास्ता ने भिक्षु को समझाया, "उस जन्म में तू ही वह धनुर्धर था। इस स्त्री ने तुम्हारी हत्या की थी। सियार का रूप धारण करने वाला इन्द्र, मैं ही था। अतः इस स्त्री में आसक्ति त्यागकर धर्म में रुचि लो।"

यह समझाते हुए शास्ता ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: निट्ठङ्गतो असन्तासी, वीततण्हो अनङ्गणो।
अच्छिन्दि भवसल्लानि, अन्तिमोयं समुस्सयो।। 351।।

अर्थ: जिसका कार्य समाप्त हो गया है अर्थात् जिसने लक्ष्य (अर्हत्व) पा लिया है, जो निर्भीक, तृष्णा रहित तथा मलरहित है, जिसने संसार के शल्यों को काट दिया है, उसका यह अंतिम जीवन होगा।

किसका यह अंतिम जीवन होगा ?
मार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

बुद्ध का कपिलवस्तु में आगमन। यशोधरा ने सोचा, "क्यों न राहुल को माध्यम बना कर तथागत को यहीं रोक लेने का प्रयत्न किया जाए ? " पुत्र राहुल से पूछा, "अपने पिता के पास जाओगे ? " राहुल ने खुश होते हुए कहा, "अवश्य।" माँ ने पूछा, "क्या कहोगे ? " "जो तुम बताओगी।" "अच्छा ! अपने पिताजी से कहना 'आप सम्पत्ति में मेरा हक दीजिए। मेरा हिस्सा दीजिए।"

आज शाक्य-मुनि के कपिलवस्तु आगमन का सातवाँ दिन था। भोजनोपरान्त शास्ता भिक्षु संघ के साथ चलने को तैयार हुए। राहुल खुशी-खुशी पिता के पास पहुँचा और बोला, "आपके साथ बहुत अच्छा लगता है।" माँ की बताई बात भूल गया। जब याद आया, तब शास्ता चलने लगे थे। वह बोलने लगा "मेरा हिस्सा दे दीजिए।" शास्ता ने कुछ नहीं कहा, वे चलते रहे। राहुल ने फिर कहा, "मेरा हिस्सा दे दीजिए।" शास्ता ने फिर कुछ नहीं कहा। जब राहुल कई बार कह गया तब तथागत ने अपना भिक्षापात्र राहुल को दे दिया। वे चलते गए। उनके साथ सारिपुत्त और भिक्षुसंघ के साथ राहुल भी विहार आ गया। विहार पहुँचने पर शास्ता ने सारिपुत्त से कहा, "सारिपुत्त ! राहुल को प्रव्रजित कर दो।" "क्या कह रहे हैं ? भन्ते ! " " राहुल का यही हिस्सा है। जिसके पास जो सम्पत्ति रहेगी, वह उसी से हिस्सा देगा। मेरी सम्पत्ति यही है।" बुद्ध ने सारिपुत्त और राहुल को समझाया। राहुल प्रव्रजित हो गए और बौद्ध विहार में ही रहने लगे। राजा शुद्धोदन और यशोधरा को यह बात मालूम हुई। बेचैनी की हालत में राजा बुद्ध के सम्मुख प्रस्तुत हुए और कहा, "तुम घर छोड़कर चले गए। मेरे हृदय को गहरी चोट लगी । नन्द ने संन्यास ले लिया तब मेरा दु:ख और भी बढ़ गया। अब राहुल को भी भिक्षु संघ में शामिल कर लिया गया। मेरे ऊपर तो अब दु:ख का बाँध ही टूट गया।" वे भरे हुए गले से बोले जा रहे थे, "मैं टूट चुका हूँ। मैं इस दु:ख को बर्दाश्त नहीं कर पा रहा हूँ।" फिर अपना कंठ साफ किया और हिम्मत करते हुए बोले, "शाक्य मुनि ! मेरी आपसे एक प्रार्थना है कि जब तक माता-पिता जिंदा रहें, उनकी अनुमति के बिना उनके बच्चों को प्रव्रजित नहीं किया जाये।"
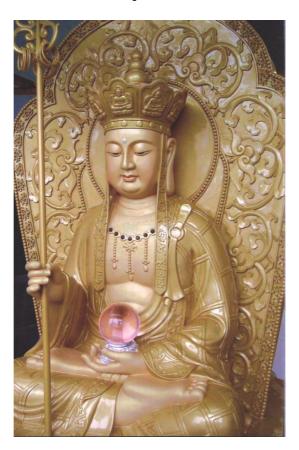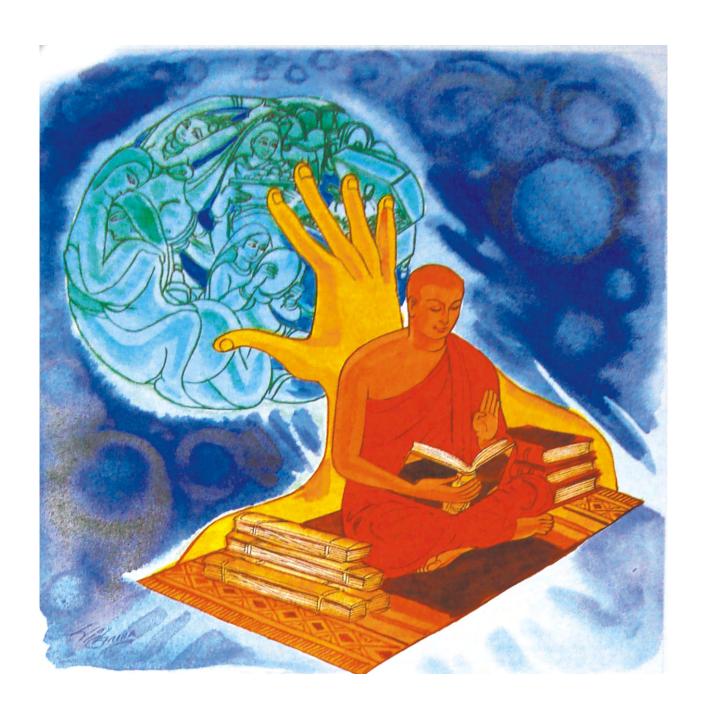
गाथा: वीततण्हो अनादानो, निरूत्तिपदकोविदो।
अक्खरानं सन्निपातं, जञ्ञा पुब्बापरानि च।
स वे "अन्तिमसारीरो, महापञ्ञो महापुरिसो" ति वुच्चति।।352।।

अर्थ: जो तृष्णा रहित, परिग्रह रहित है, जो भाषा और काव्य को जानता है, जो व्याकरण को जानता है, वह निश्चय ही अंतिम शरीर वाला तथा महाप्राज्ञ है।

तृष्णा रहित महाप्राज्ञ का यह अंतिम जीवन होगा
मार की कथा

शास्ता ने धर्म के तथ्यों को स्पष्ट किया, जीवन के सही उद्देश्यों की चर्चा की और इस प्रकार राजा को ढाढ़स बँधाया। राजा शान्त हुए। भिक्षुसंघ को बुलाकर प्रव्रज्या के नियमों में राजा शुद्धोदन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया गया। आगे से माता-पिता की अनुमति के बिना बच्चों को भिक्षु संघ में भिक्षु नहीं बनाया जाएगा।

लेकिन राहुल तो प्रव्रजित हो गए थे। उनके ऊपर यह नियम लागू नहीं हो सकता था। वे विहार में रहने लगे। वे भिक्षाटन में सदा पिता के साथ ही जाते ।

एक दिन बहुत सारे भिक्षु जेतवन विहार आ पहुँचे। राहुल के कमरे में उनके रात्रि विश्राम की व्यवस्था की गई। राहुल को कहीं और सोना था। और कहीं स्थान न देखकर राहुल ने गंधकुटी के बाहर ही अपना आसन लगा लिया। उस समय आयुष्मान राहुल को अर्हत्व प्राप्त किए एक वर्ष भी नहीं हुआ था। मार यह सब देख रहा था। उसने सोचा, "श्रमण गौतम की दु:खती अंगुली (पुत्र) बाहर पड़ी हुई है। अपने आराम से गंधकुटी में सोये हुए हैं। क्यों न अँगुली को दु:ख दिया जाए, शरीर को स्वत: ही दु:ख का अनुभव होने लगेगा।"

ऐसा सोचकर मार ने एक विशाल हाथी का रूप ले लिया और वहाँ आकर अपनी सूँड़ से राहुल के सिर पर प्रहार किया तथा जोर से चिंघाड़ा। शास्ता ने अन्दर से ही सब कुछ देख लिया था। मार के असली स्वरूप को वे समझ गए थे। अत: उन्होंने मार से कहा, "मार ! तुम्हारे जैसे लाखों मार भी आ जायें तो वे मेरे पुत्र को किसी प्रकार भयभीत नहीं कर सकते क्योंकि मेरा पुत्र निर्भीक, तृष्णा रहित, महाशक्तिशाली और महाप्राज्ञ है।" तब उन्होंने ये दो गाथायें कहीं।
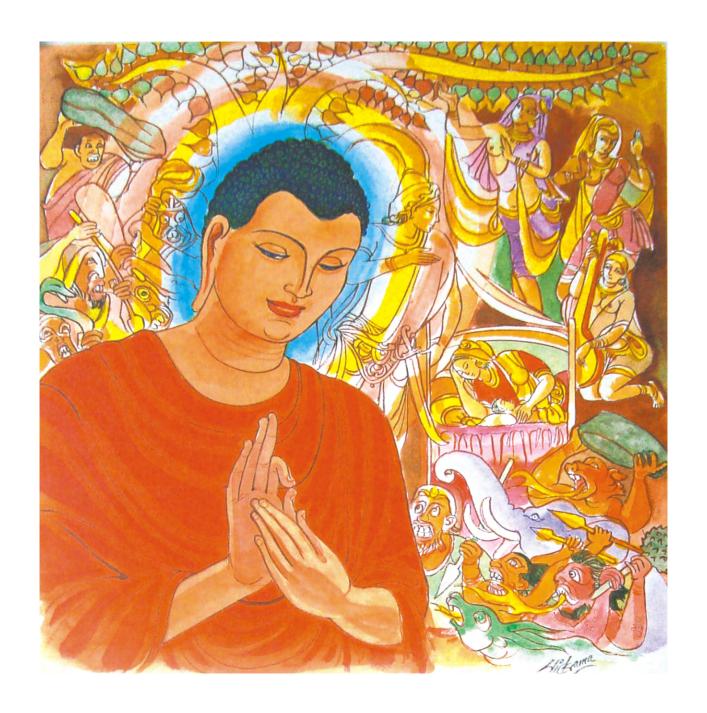
गाथा: सब्बाभिभू सब्बविदूहमस्मि, सब्बेसु धम्मेसु अनूपलित्तो।
सब्बञ्जहो तण्हक्खये विमुत्तो, सयं अभिञ्ञाय कमुद्दिसेय्यं।।353।।

अर्थ: मैं राग आदि सभी को परास्त कर चुका हूँ। मैं सब कुछ जानने वाला हूँ। सभी धर्मों (तृष्णा, दृष्टि आदि) में अलिप्त हूँ। सब कुछ त्याग चुका हूँ, तृष्णा के नाश से विमुक्त हूँ। परम ज्ञान को स्वयं ही प्राप्त कर मैं किसको अपना उपाध्याय या आचार्य बताऊँ ?

बुद्ध कौन है ?
उपक आजीवक की कथा

स्थान : अन्तरामग्ग

बुद्ध को ज्ञान की प्राप्ति हुई। कुछ दिन सोचते रहे, "इस ज्ञान को लोगों में किस प्रकार वितरित किया जाए" क्योंकि उन्होंने पाया कि संसार की ऐसी स्थिति थी कि 'पिंजड़े का दरवाजा खुला है पर पंछी बाहर आना नहीं चाहता।' वे उस समय तक इसी चिंतन में खोये रहे, जब तक धरती ने कराहकर नहीं कहा, "शास्ता ! अब आप उठें। बहुत विलंब हो चुका। सारी धरती पीड़ा से कराह रही है। उस पीड़ा को आप दूर करें।" तब शाक्य मुनि ने अपने मन में विचार किया कि अपने ज्ञान को सबसे पहले किसके साथ बाँटूँ ? अपने पूर्व गुरुओं की स्मृति हुई। पर उन्हें मालूम था कि उनके गुरू आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त आदि शरीर त्याग चुके थे। इसके बाद उनकी दृष्टि में पंचवर्गीय भिक्षु आए। उन्होंने सोचा कि अपना ज्ञान सर्वप्रथम उनके साथ ही बाँटना चाहिए। उन्होंने इन भिक्खुओं के बारे में पता लगाया तो पता चला कि ये वाराणसी के पास मृगदाव (ऋषिपतन, अर्थात् इसपत्तन) में रह रहे हैं। अतः बोधगया से बुद्ध वाराणसी की ओर चल पड़े।

रास्ते में उनकी भेंट उपक नामक एक आजीवक से हो गई। वह शरीर से नंगा था। उसने बुद्ध को देखकर पूछा, "आपके संपूर्ण शरीर से आभा ही आभा झलक रही है। आप अति शांत और प्रसन्नचित दिखाई दे रहे हैं। आप किस धर्म के अनुयायी हैं ? आपके गुरू कौन हैं ? " शास्ता ने कहा, "मेरा न तो कोई धर्म है और न कोई आचार्य ही है। मैं सभी धर्मों से ऊपर हूँ। सबों का त्याग कर दिया है। मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है। मैं स्वयं अपना गुरू, अपना मार्ग हूँ। मैं विमुक्त हूँ। मेरे समान कोई दूसरा नहीं। मैं अर्हत हूँ, मैं बुद्ध हूँ।"

इन बातों को सुनकर आजीवक ने तथागत के इन वचनों का न तो अभिनन्दन ही किया और न विरोध। हाँ, उसने अपना सिर हिलाया, जिह्वा निकालकर उपेक्षा का भाव दिखाया और पगडंडी पकड़ उधर चला गया जिधर शिकारियों का गाँव था।

गाथा: सब्बदानं धम्मदानं जिनाति, सब्बरसं धम्मरसो जिनाति।
सब्बरतिं धम्मरति जिनाति, तण्हक्खयो सब्बदुक्खं जिनाति।। 354।।

अर्थ: धर्म का दान सभी दानों से बढ़कर है, धर्म-रस सभी रसों से बढ़कर है, धर्म-रति सभी रतियों से बढ़कर है और तृष्णा का क्षय सब दु:ख क्षयों से बढ़कर है।

सर्वश्रेष्ठ क्या है ?
शक के प्रश्न की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार त्रायस्त्रिंश देवलोक में देवतागण आपस में चर्चा कर रहे थे। उनकी चर्चा का विषय था : (1) दानों में कौन सा दान श्रेष्ठ है ? (2) रसों में कौन सा रस श्रेष्ठ है ? (3) अनुरागों में कौन सा अनुराग श्रेष्ठ है ? तथा (4) तृष्णा क्षय (अर्हत्व) को श्रेष्ठ क्यों कहा जाता है ? वे सभी आपस में मिलकर भी इन प्रश्नों का उत्तर नहीं ढूँढ़ पाये। बहुत समय तक इन प्रश्नों पर शोध करते रहे पर उचित उत्तर नहीं खोज पाये।

अंत में चार महाराजिक देवताओं ने कहा, "हम भी इसका उत्तर नहीं जानते। पर हमारा राजा बहुत ज्ञानी है। वह हजार लोगों के प्रश्न का भी एक साथ उत्तर दे सकता है। वह प्रज्ञा और प्रण्य में भी हम सबों से श्रेष्ठ है। अच्छा होता हम इन प्रश्नों के समाधान के लिए उसके पास चलते।"

वे सब मिलकर एक साथ देवराज इन्द्र के पास गए। देवताओं ने अपनी जिज्ञासा उनके सामने रखी। इन्द्र ने इन प्रश्नों को सुना तो कहा, "ये सारे प्रश्न बुद्धज्ञान विषयक हैं। इनका उत्तर बुद्ध के अलावा और कोई नहीं दे सकता। अच्छा हो हम सब चलकर उनसे ही इनका उत्तर पूछें।" "शास्ता इस समय कहाँ होंगे ? " "जेतवन में।" "तो जेतवन ही चला जाए।" ऐसा कहकर इन्द्र के नेतृत्व में सभी देवतागण रात्रि में शास्ता के सम्मुख प्रकट हो, उन्हें सादर प्रणाम कर एक ओर बैठ गए। देवताओं की उपस्थिति से सारा जेतवन आलोकित हो रहा था। शाक्य मुनि ने पूछा, "देवराज इन्द्र ! इतने बड़े देवताओं के समूह के साथ इतनी रात गए आने का क्या प्रयोजन है ? " शक्र ने तब उन प्रश्नों को रखा तथा उत्तर के लिए प्रार्थना की।

शाक्य मुनि ने उनकी शंका का समाधान करते हुए कहा, "तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर हैं : (1) सभी दानों में धर्मदान श्रेष्ठ है। (2) सभी रसों में धर्म रस श्रेष्ठ है (3) सभी अनुरागों में धर्म के प्रति अनुराग श्रेष्ठ है तथा (4) तृष्णा-क्षय अर्हत्व प्राप्ति कराने के कारण श्रेष्ठ कहलाता है। यह सब समझाते हुए उन्होंने यह गाथा कही।

गाथा: हनन्ति भोगा दुम्मेधं, नो च पारगवेसिनो।
भोगतण्हाय दुम्मेधो, हन्ति अञ्ञेव अत्तनं।। 355।।

अर्थ: यदि कोई व्यक्ति संसार से पार जाने की इच्छा नहीं करता है तो विषय भोग उस दुर्बुद्धि पुरुष का नष्ट कर डालते हैं। भोग की तृष्णा में पड़कर दुर्बुद्धि पराये की भाँति अपने आप को ही मार डालता है।

भोग की तृष्णा से बचें : आपको ही मार डालेगी
अपुत्रक श्रेष्ठी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा प्रसेनजित धर्म-प्रवचन सुनने कई दिनों बाद पहुँचे। राजा ने बुद्ध को स्वयं ही विलम्ब का कारण स्पष्ट करते हुए बताया, "श्रावस्ती का एक श्रेष्ठी मर गया था। उसकी कोई संतान नहीं थी। अतः उसकी सारी सम्पत्ति को राजकीय खजाने में लाकर रखना था। इसी में सात दिन लग गए। उसके पास इतनी अधिक सम्पत्ति थी। अब सारे धन को राजकीय खजाने में रखवा दिया है तब फुर्सत मिली है तो आपके दर्शन को उपस्थित हुआ हूँ।" "लेकिन एक बड़े आश्चर्य की बात थी। इतना धन होने के बावजूद भी वह श्रेष्ठी कभी स्वादिष्ट भोजन नहीं करता था, रूखी-सूखी ही खाता था, फटे - पुराने कपड़े पहनता था तथा पुराने रथों पर ही चलता था।"

शास्ता ने यह बात सुनी तो राजा को बताया, "महाराज ! यह सब पूर्व कर्मों का फल है।" राजा के पूछने पर शास्ता ने उसके पूर्वकाल की कथा सुनाई।

पूर्वकाल में इसने तगरशिखी नामक प्रत्येक बुद्ध को दान दिलवाया था। इससे यह धन-सम्पत्ति वाला हुआ। लेकिन दान देने के बाद इसे अफसोस हुआ । अतः इसकी भूख तथा वस्त्र आदि पहनने की इच्छा जाती रही। संपत्ति के लोभ में इसने अपने भतीजे को जंगल में ले जाकर उसकी हत्या कर दी । इस कारण उसे संतान का सुख प्राप्त नहीं हुआ। प्रत्येक बुद्ध को दान देने के कारण वह इतनी संपत्ति वाला बना। पर यहाँ भी इसने कोई दान-पुण्य नहीं किया। इसलिए मृत्यु के बाद उसने नरक में जन्म लिया है।

तब बुद्ध ने यह गाथा सुनाई।
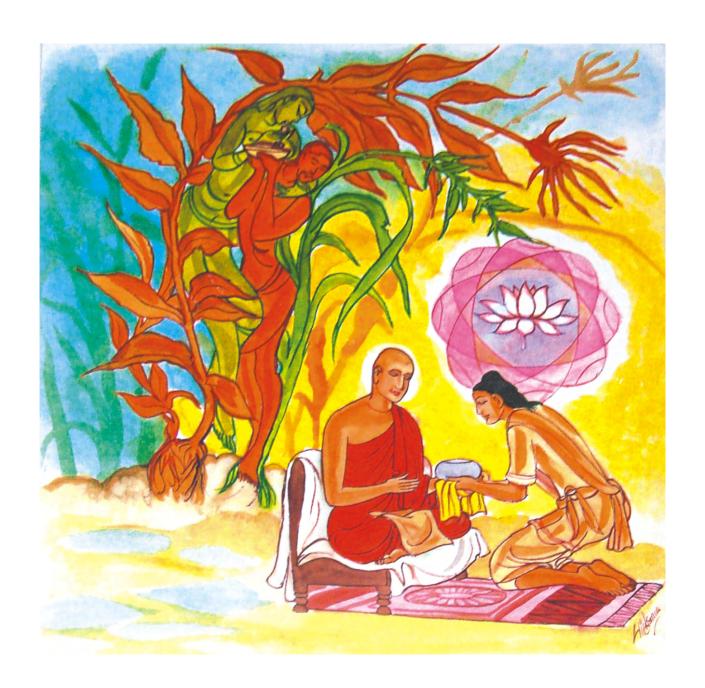
गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, रागदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतरागेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 356।।

अर्थ: खरपतवार खेतों का दोष है। राग प्रजा का दोष होता है, इसलिए राग रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

वीतराग को दान महान
देवपुत्र अंकुर की कथा

स्थान : पण्डुकम्बलसिला

एक समय बुद्ध तावतिंस दिव्य लोक में पाण्डुकमल शिला पर बैठे थे। उस समय देवताओं में चर्चा चली कि इन्द्रक ने एक बार भिक्षा चारिका करते हुए स्थविर अनिरुद्ध को एक कलछुल भर भात की भिक्षा दी थी। इन्द्रक का यह छोटा सा पुण्य अंकुर के कई वर्षों के दान-पुण्य से बहुत अधिक प्रभावशाली रहा। अंकुर ने कई वर्षों तक चूल्हों की लम्बी कतार लगाकर, उनमें लगातार स्वादिष्ट भोजन बनवाकर दान दिया था। पर उसका इतना बड़ा दान इन्द्रक के उस एक कलछुल भात के सामने फीका पड़ गया। 'इन्द्रक को यह महाफल क्यों और कैसे मिला ?' सभी देवताओं के बीच यही चर्चा का विषय था। "यह कैसा गणित था ? दोनों दान के पीछे क्या रहस्य था ? कौन सी तर्क-सारणी काम कर रही थी ? "

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, दोसदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतदोसेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 357।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, प्रजा का दोष द्वेष है, इसलिए द्वेष रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

दोषरहित को दिया दान श्रेष्ठ
देवपुत्र अंकुर की कथा

देवतागण ने आपस में मंत्रणा की । विचार-विमर्श किया। पर कोई उत्तर नहीं ढूँढ़ पाये। तब इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने शास्ता के पास पहुँच गए। शास्ता ने अंकुर को संबोधित करते हुए कहा, "अंकुर ! दान तो सोच समझकर विवेकपूर्ण ढंग से ही करना चाहिए। अगर दान सोच समझकर, विवेकपूर्ण ढंग से सही पात्र को दिया जाता है तो वह अच्छे खेत में ठीक तरह बोये हुए बीज की तरह फलदायी होता है। अगर ऐसा नहीं किया जाता है तो उस दान का महत्व नहीं रह जाता। तुमने वैसा नहीं किया। अतः तुम्हारे द्वारा दिया गया दान प्रभावशाली नहीं रहा।"

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, मोहदोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीतमोहेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 358।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, इस प्रजा का दोष मोह है, इसलिए मोह रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

मोहरहित को दिया दान महान
देवपुत्र अंकुर की कथा

"दान ही सब कुछ नहीं है। दान जिसे दिया जाता है, दान प्राप्त करने वाला पात्र भी महत्वपूर्ण है। मन की किस दशा से दान दिया जाता है वह भी महत्वपूर्ण है। जैसे खेतों में घास-पात, खर-पतवार आदि उगी हो और उसी के ऊपर अगर बीज फेंक दिया जाये तो वे बीज व्यर्थ जायेंगे। खर-पतवार उन बीजों को खा जायेगी और वे नहीं उगेंगे। पैदा भी होंगे तो बढ़ नहीं पायेंगे। खर-पतवार से ही दब जायेंगे, खो जायेंगे। इसी प्रकार मनुष्य की कमजोरी, उसका दोष है- राग। अगर रागी को दान दिया गया तो दिया हुआ दान उस राग में ही लुप्त हो जायेगा। उल्टे यह उसका राग ही बढ़ायेगा। इसलिए अगर दान देना है तो वीतरागी को देना उचित है।"

गाथा: तिणदोसानि खेत्तानि, इच्छादोसा अयं पजा।
तस्मा हि विगतिच्छेसु, दिन्नं होति महप्फलं।
तिणदोसानि खेत्तानि, तहणादोसा अयं पजा।
तस्मा हि वीततण्हेसु, दिन्नं होति महप्फलं।। 359।।

अर्थ: तृण (खर पतवार) खेतों का दोष है, इस प्रजा का दोष इच्छा है, इसलिए इच्छा रहित व्यक्तियों को दान देने में महाफल प्राप्त होता है।

इच्छारहित को दिया दान महाफलदायी
देवपुत्र अंकुर की कथा

उदाहरण के लिए हम देखते हैं कि सामा, कोदो आदि निरर्थक घास पहले की खेती वाले या बाद की खेती वाले खेतों को बेकार कर उनमें अधिक अन्न उत्पन्न नहीं होने देते। इसी प्रकार प्राणियों के चित्त में उत्पन्न हुआ राग प्राणियों को दूषित कर देता है। वैसे लोगों को दान देना या नहीं देना- दोनों ही बराबर है। अर्हतों को दिया गया दान ही फलदायी हो सकता है। शाक्य मुनि ने स्पष्ट करते हुए बताया, "सोच समझकर, विवेकपूर्ण ढंग से दान करना चाहिए। तभी वह दान अधिक फल दायक होता है। विवेकपूर्ण दान की बुद्ध भी प्रशंसा करते हैं। इस जीव लोक में जो दान देने योग्य पात्र हैं उन्हीं को दिया हुआ दान अधिक फलप्रद होता है; जैसे अच्छे खेत में भली भाँति बोया हुआ बीज अधिक फलदायी होता है।"

तब बुद्ध ने ये चार गाथायें कहीं।

DHAMMAPADA
TANHA VAGGA

सच्चा संत कौन ?
धम्मपद
भिक्खु वर्ग
गाथा और कथा

सच्चा संत कौन ?

धम्मपद

भिक्खु वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

भिक्खु वर्ग

गाथा: चक्खुना संवरो साधु, साधु सोतेन संवरो।
घानेन संवरो साधु, साधु जिव्हाय संवरो।। 360।।

अर्थ: आँखों का संयम करना अच्छा है, कान का संयम करना अच्छा है, नाक का संयम अच्छा है और जिह्वा का संयम अच्छा है।

किसका संयम हितकारी है ?
पाँच भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि उन दिनों जेतवन में विराजते थे। वहाँ पाँच भिक्षु ऐसे थे जिनमें से प्रत्येक सिर्फ एक-एक इन्द्रिय पर संयम बरत पाता था। जैसे एक भिक्षु अपनी आँखों पर संयम रखता था, अन्य इन्द्रियों पर नहीं। उसी प्रकार दूसरा अपने कानों के प्रति अधिक सतर्क था पर दूसरी इन्द्रियों की उपेक्षा करता था; आदि, आदि।

एक दिन उन भिक्षुओं में चर्चा छिड़ गई कि शरीर की कौन सी इन्द्रिय सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। सभी अपने-अपने इन्द्रिय संयम को सबसे महत्वपूर्ण बतलाने लगे। वाद विवाद बढ़ता गया। कोई भी दूसरी इन्द्रियों को महत्वपूर्ण मानने को तैयार नहीं था। जब बात आपस में सुलझती हुई नजर नहीं आई तो उन पाँच भिक्षुओं ने विचार किया कि हमें शास्ता के पास चलकर अपनी शंका का समाधान ढूँढ़ना चाहिए।

गाथा: कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु, सब्बदुक्खा पमुच्चति।। 361।।

अर्थ: शरीर का संयम अच्छा है, वाणी का संयम अच्छा है, मन का संयम अच्छा है। सभी इन्द्रियों पर संयम रखने वाला भिक्षु सभी दु:खों से मुक्त हो जाता है।

सभी इन्द्रियों का संयम हितकारी है
पाँच भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

उन्होंने तथागत से पूछा, "भन्ते ! हम सभी एक-एक इन्द्रिय का संयम कर रहे हैं और हमें लगता है कि हमारी इन्द्रिय का संयम ही सबसे कठिन है। आप कृपा करके हमें बताइये कि किस इन्द्रिय का संयम सबसे कठिन है।"

शास्ता ने उनके उत्साह को कम नहीं किया और भिक्षुओं को समझाया, "यह नहीं कहा जा सकता है कि फलाँ इन्द्रिय का संयम सबसे कठिन है और फलाँ इन्द्रिय का संयम सबसे आसान। वस्तुतः सभी इन्द्रियों अर्थात् प्रत्येक इन्द्रिय का संयम करना कठिन चुनौती है। तुम लोग आज पहली बार इस प्रकार के विवाद में नहीं पड़े हो। पहले भी तुमने पंडितों की बात नहीं मानी और इसी प्रकार के वाद-विवाद में फँसते रहे और अपनी जान गँवा बैठे।" भिक्षुओं ने एक साथ पूछा, "यह कैसे ? भन्ते ! विस्तार से कथा सुनाइये।"

तब बुद्ध ने उन्हें तक्षशिलाजातक की कथा सुनाई। "उस काल में भी तुम पाँचों राज्य प्राप्ति के लिए बोधिसत्व के साथ अपने हाथों में शस्त्र लेकर उनके। राक्षसियों ने रास्ते में अनेक मनमोहक जाल फैला रखे थे। पंडित बोधिसत्व के समझाने पर भी उनकी बात न मानकर तुम पाँचों उन राक्षसियों के जाल में फँस गए और अपना जीवन खो बैठे। इसके विपरीत तुम्हारे ही साथ चलता हुआ दूसरा व्यक्ति उन मनमोहक जालों मे नहीं फंसा। वह इन्द्रियों पर कुशलतापूर्वक संयम रखकर तक्षशिला का राजा बन गया। वह राजा मैं ही था।"

उस जातक से मेल बैठाते हुए शास्ता ने ये दो गाथायें कहीं।
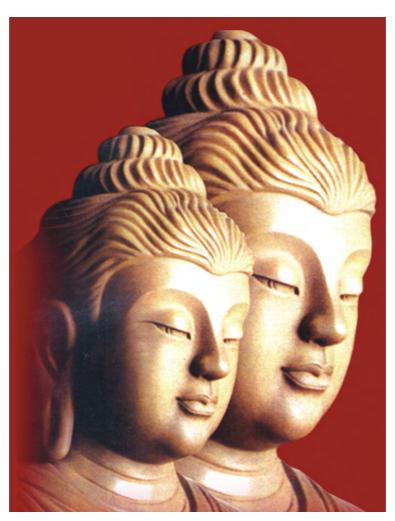
गाथा: हत्थसंयतो पादसंयतो, वाचासंयतो संयतुत्तमो।
अज्झत्तरतो समाहितो, एको सन्तुसितो तमाहु भिक्खुं।। 362।।

अर्थ: विद्वान लोग उसी को 'भिक्षु' कहते हैं जो अपने हाथों और पैरों पर संयम रखता है। जो अपनी वाणी पर संयम रखता है, वही श्रेष्ठ संयमी है। जो समाधि में स्थित है और एकांत जीवन बिताते हुए संतोषपूर्वक रहता है वही वस्तुत: भिक्षु है।

भिक्षु कौन है ?
हंस मारने वाले भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार दो युवक भिक्षु अचिरावती नदी के किनारे स्नान कर धूप का आनन्द ले रहे थे। ऊपर आकाश में हंसों के झुंड उड़ रहे थे। दोनों युवकों में एक पत्थर से निशाना लगाने में बहुत ही तेज था। उसने अपने मित्र से एक हंस की ओर इंगित करते हुए कहा, "मेरा निशाना इतना अचूक है कि इस हंस की आँख वेध सकता हूँ।" "ऐसा नहीं हो सकता", दूसरे ने कहा।

निशानेबाज भिक्षु ने एक पत्थर उठाया और उस निरीह पक्षी पर निशाना लगाते हुए पत्थर चला दिया। वह पत्थर उस निर्दोष पक्षी की एक आँख में लगा और दूसरी आँख बेधता हुआ बाहर निकल गया। हंस तड़पता हुआ धरती पर आ गिरा।

भिक्षुओं ने उस निशानेबाज भिक्षु के इस काम की बड़ी निन्दा की और शाक्य मुनि को भी इसकी जानकारी दी । उन्होंने उस भिक्षु को बुलाया और उसे धिक्कारा, "भिक्षु ! तुम तो निर्वाण के मार्ग पर अग्रसर हो, बुद्धशासन में प्रतिष्ठित हो, तुमने ऐसा कैसे कर डाला ? पुराने जमाने में बुद्धावतार से पहले बुद्धिमान लोग अल्प मात्र प्रमाद होने पर भी दु:ख प्रकट करते थे और पश्चाताप किया करते थे पर इतना बड़ा अपराध करने पर भी तुम्हें न तो जरा दु:ख ही हुआ और न जरा भी पश्चाताप।"

भिक्षुओं ने अतीत कथा सुनाने का आग्रह किया। तब उन्होंने कुरुधम्मजातक की कथा सुनाई और बोले, "प्राचीन काल में पंडित अगर थोड़ा सा भी शीलभंग करते थे तो तुरंत पश्चापात किया करते थे। पर तू जरा भी पश्चाताप प्रकट नहीं कर रहा है। तू ने बहुत ही अनुचित अपराध किया है। भिक्षु को तो हाथ, पैर और वाणी से संयमित व्यवहार करना चाहिए।"
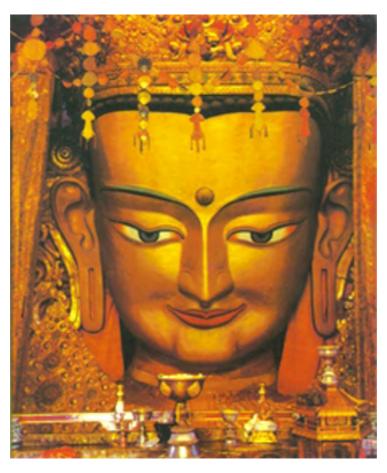
गाथा: यो मुखसंयतो भिक्खु, मन्तभाणी अनुद्धतो।
अत्थं धम्मञ्च दीपेति, मधुरं तस्स भासितं।। 363।।

अर्थ: जो भिक्षु वाणी से संयमित है, मितभाषी है और मनन करके बोलता है जो उद्धत नहीं होता है, अर्थ और धर्म को प्रकाशित करता है, उसका भाषण मधुर होता है।

किसका भाषण मधुर होता है?
कोकालिक भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार कोकालिक भिक्षु ने अग्रश्रावकों, सारिपुत्र और मोग्गलान को अपशब्द कहा। इसके कारण उसे पृथ्वी तुरंत ही निगल गई।

बुद्ध को यह बात बताई गई तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! यह भिक्षु कोकालिक आज ही नहीं, पहले भी अपनी वाणी के दुरुपयोग से प्राण गँवा बैठा था। पर उस गलती से भी उसने कुछ नहीं सीखा।" तब भिक्षुओं ने वह कथा सुनाने का आग्रह किया।

शाक्य मुनि ने उन्हें प्राचीन काल की कच्छप कथा सुनाई। पुराने जमाने में हिमालय की तलहटी पर एक सरोवर में एक कछुआ रहता था। हंस के दो बच्चे भोजन की तलाश में उधर आने लगे। धीरे-धीरे उनका कछुए से परिचय बढ़ता गया। एक दिन हंस के बच्चों ने कहा, "हिमालय प्रदेश में चित्रकूट पर्वत के पास एक रमणीय स्थान है। क्या तुम हमारे साथ वहाँ चलोगे ? " "मैं वहाँ कैसे जा सकता हूँ ? " "अगर तुम अपना मुँह बंद रख सको तो हम तुम्हें वहाँ ले चल सकते हैं।" "हाँ, मैं अपना मुँह बंद रखूँगा, तुम मुझे वहाँ ले चलो।" तब वे हंस कहीं से एक डंडा ले आए और डंडे का मध्य भाग कछुए के मुँह में पकड़ा दिया, लकड़ी के दोनों सिरों को उन्होंने अपने मुँह से पकड़ लिया और कछुए को साथ ले उड़े।

हंसों द्वारा इस प्रकार कछुए को डंडे के सहारे ले जाते देखकर बच्चों का झुंड उनके पीछे लग गया और चिल्लाने लगा, "कितने आश्चर्य की बात है। है न ? " कछुआ इन बातों को सुन रहा था। अपने वायदे के अनुसार उसे मुँह बंद रखना चाहिए था। निन्दा सुनने के बाद भी वाणी का संयम रखना चाहिए था। पर वह ऐसा नहीं कर पाया। उसने उन बालकों को सम्बोधित करते हुए कहा, "दुष्ट बालकों ! अगर मेरे मित्र मुझे इस प्रकार ले जा रहे हैं तो तुम्हें क्या कष्ट है ? " डंडा मुँह से छूटा, कछुआ धरती पर गिर प्राण गवां बैठा।

शास्ता ने स्पष्ट किया, " श्रेष्ठजन ! इस कहानी से शिक्षा लेनी चाहिए। मनुष्य को कुशल वाणी ही बोलनी चाहिए और वह भी उचित समय पर। समय की सीमा का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। आपलोगों ने देख लिया कि अगर कछुए ने वाणी का उल्लंघन नहीं किया होता तो फिर वह मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।" भिक्षु के गुणों को समझाते हुए उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! वाणी पर संयम रखकर सबों के साथ नम्रतापूर्वक एक समान व्यवहार करना चाहिए।"

टिप्पणी : कहते हैं कि लोग सोच ही रहे थे कि मैं मूर्ख था या नहीं। मैंने मुँह खोला और साबित कर दिया कि मैं मूर्ख था।

गाथा: धम्मारामो धम्मरतो, धम्मं अनुविचिन्तयं।
धम्मं अनुस्सरं भिक्खु, सद्धम्मा न परिहायति।। 364।।

अर्थ: धर्म में ही रमण करने वाला, धर्म में रत, धर्म का चिन्तन करने वाला, धर्म का अनुसरण करने वाला भिक्षु सच्चे धर्म के पथ से च्युत नहीं होता।

बुद्ध का सच्चा शिष्य कौन ?
धम्माराम थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जब से शाक्य मुनि ने घोषणा की, 'आज से चार महीने में मेरा महापरिनिर्वाण हो जायेगा,' अनेक भिक्षु उनके आस-पास ही रहने लगे। साधारण भिक्षु शास्ता के पार्थिव शरीर से बिछड़ने की सोचकर अपने आँसू रोक नहीं पा रहे थे। अर्हत भिक्षुओं में भी धर्मसंवेग हो गया। सभी अपना-अपना समूह बनाकर विचार करने लगे, 'अब आगे क्या होगा ? हमें आगे क्या करना चाहिए,' आदि, आदि।

धम्माराम नाम का एक भिक्षु इनसे भिन्न था। उसने भी शास्ता के परिनिर्वाण की खबर सुनी। तब उसने सोचा, "शास्ता चार महीनों बाद शरीर त्याग देंगे और इधर एक मैं हूँ जो अभी तक सांसारिक राग और बंधनों से मुक्त नहीं हो पाया हूँ। संसार से मेरी आसक्ति अभी तक छूटी नहीं है। क्यों न मैं शास्ता के रहते ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ ? " यह विचार कर, वह पूर्ण समर्पण के साथ एकाग्रचित्त होकर एकांत साधना करने लगा। वह न तो किसी भिक्षु से मिलता-जुलता था और न किसी से कोई बातचीत ही करता था। वह सिर्फ अपनी साधना में लगा रहता था।

यह देखकर भिक्षुगण शास्ता के पास गए और उनसे शिकायत की, "भन्ते ! धम्माराम आपमें जरा भी श्रद्धा नहीं रखता। जब कभी हम लोग आपके परिनिर्वाण की चर्चा करते हैं तो वह कभी भी उस चर्चा में भाग नहीं लेता है ।" शाक्य मुनि ने उसे बुलाकर पूछा, "भिक्षु ! क्या तुम सचमुच ऐसा करते हो ? " "हाँ भन्ते ! " "पर किस कारण ? " तब धम्माराम ने स्पष्ट किया, "भन्ते ! चार मास बाद आप परिनिवृत्त हो जायेंगे। मेरा सांसारिक राग अभी तक पूर्णतः समाप्त नहीं हुआ है। अतः चाहता हूँ कि कठिन साधना कर आपके परिनिर्वाण से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लूँ।" शाक्य मुनि ने कहा, "साधु ! साधु !! " फिर उन्होंने भिक्षुओं को समझाया, "भिक्षुओं ! तुम सभी को धम्माराम की तरह होना चाहिए। वास्तविक श्रद्धा तो फूल या गंध द्वारा व्यक्त नहीं की जा सकती । वास्तविक श्रद्धा तो धर्म के सही अनुपालन द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है और ऐसा शिष्य मुझे बहुत प्रिय है।" इसे समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही। गाथा सुनकर धम्माराम अर्हत हो गया।
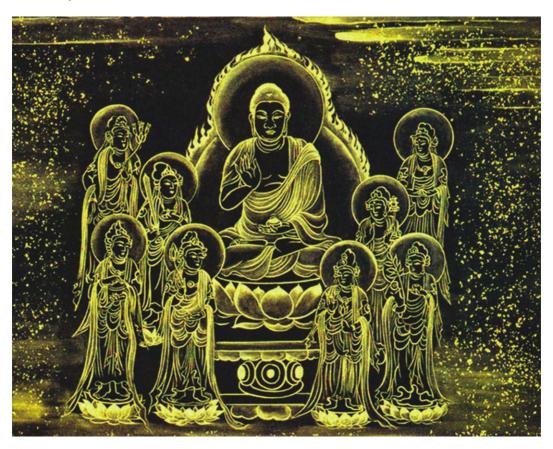
गाथा: सलाभं नातिमञ्ञेय्य, नाञ्ञेसं पिहयं चरे।
अञ्ञेसं पिहयं भिक्खु, समाधिं नाधिगच्छति।। 365।।

अर्थ: भिक्षु को अपने लाभ की अवहेलना नहीं करनी चाहिए और न दूसरों के लाभ की स्पृहा (चाह)। दूसरों के लाभ की स्पृहा करने वाला भिक्षु चित्त की एकाग्रता प्राप्त नहीं कर पाता। अतः समाधि (ध्यानादि धर्म) को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होता।

आप भला तो जग भला
विपक्षसेवक भिक्षु की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

भिक्षु विपक्षसेवक का एक मित्र था जो देवदत्त पक्ष का भिक्षु था। एक दिन विपक्षसेवक भिक्षाटन कर वापस आ रहा था तो वह रास्ते में मिल गया। उसने विपक्षसेवक से पूछा, "कहाँ गये थे ? " "भिक्षाटन के लिए।" "भिक्षा मिली ? " "हाँ मिल गई।" मित्र ने विपक्षसेवक से कहा, "हमारे विहार में बहुत लाभ-सत्कार होता है। तुम भी कुछ समय मेरे ही साथ ठहर जाओ।" उसके आग्रह पर विपक्षसेवक ने उसकी बात मान ली और देवदत्त के विहार में कुछ दिन रुक गया। उसने देवदत्त के सौजन्य से मन से खाया-पीया, आराम किया और फिर कुछ दिनों बाद वेणुवन चला गया।

भिक्षुओं ने उसे वापस आते देखा तो तथागत को सूचित किया, "भन्ते ! यह देवदत्त के पक्ष का भिक्षु है क्योंकि देवदत्त के द्वारा प्राप्त लाभ-सत्कार का उपभोग करता रहा है।" शास्ता ने उससे पूछा, " भिक्षु ! ये भिक्षुगण जो कह रहे हैं क्या वह सही है ? " भिक्षु ने उत्तर दिया, "हाँ भन्ते ! मैं अपने एक भिक्षु मित्र के कहने से वहाँ कुछ समय रुक गया था पर मैं न तो देवदत्त का पक्षधर हूँ और न उसके मत में मेरी कोई रुचि है।" शास्ता ने उसे समझाते हुए कहा, "अरे ! तुम कहते हो कि तुम्हें देवदत्त का मत स्वीकार नहीं है पर घूम रहे हो उन्हीं मतावलम्बियों के ही साथ ! तुम्हारा यह आचरण आज का नहीं है। बल्कि तुम तो पहले भी ऐसा कर चुके हो और न ही आजतक तुमने अपना आचरण सुधारा।

गाथा: अप्पलाभोपि चे भिक्खु, सलाभं नातिमञ्ञति।
तं वे देवा पसंसन्ति, सुद्धाजीविं अतन्दितं।। 366।।

अर्थ: भले ही स्वलाभ थोड़ा हो, यदि भिक्षु अपने लाभ की अवहेलना नहीं करता तो उस शुद्ध आजीविका वाले आलस्य रहित भिक्षु की देवता भी प्रशंसा करते हैं।

अपनी भलाई : अपने हाथों में
विपक्षसेवक भिक्षु की कथा

भिक्षुओं को विपक्षसेवक का भूतकाल जानने की जिज्ञासा हुई। अतः उन्होंने शास्ता के सम्मुख निवेदन किया, "भन्ते ! विपक्षसेवक का आज का आचरण हमने देख लिया पर पूर्वकाल में क्या हुआ था ? उसने किस प्रकार धर्म का उल्लंघन किया था ? कृपया हमें बताने का कष्ट करें।"

तब तथागत ने महिलामुखजातक की कथा विस्तार से सुनाई, "महिलामुख हाथी पुराने चोरों की बात मानकर, उनका आचरण अपना कर लोगों को मारने वाला हो गया। इसके विपरीत वही गजराज, आगे चलकर संयमी पुरुषों की बात सुनकर, उनका आचरण अपना कर पुनः सर्वगुणसम्पन्न हो गया।"

शास्ता ने उपदेश दिया, "भिक्षुओं ! भिक्षु को अपने ही लाभ में संतुष्ट रहना चाहिए। दूसरों से लाभ की उम्मीद नहीं लगानी चाहिए क्योंकि दूसरों से लाभ की आशा रखने वाले व्यक्ति को ध्यान, विपश्यना और मार्गफल - इनमें से एक भी धर्मफल प्राप्त नहीं हो पाता। इसके विपरीत अपने ही लाभ से संतुष्ट भिक्षु को ये ध्यान आदि धर्मफल प्राप्त हो जाते हैं।"

फिर बुद्ध ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: सब्बसो नामरूपस्मिं, यस्स नत्थि ममायितं।

असता च न सोचति, स वे "भिक्खू" ति वुच्चति।। 367।।

अर्थ: नाम रूप (पंचस्कन्ध) वाले संसार में जिसका कुछ भी 'मेरा' नहीं है, जो किसी वस्तु के न रहने पर शोक नहीं करता, वही भिक्षु कहलाता है।

सच्चा भिक्षु कौन है ?
पंचग्र-दायक ब्राह्मण की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती में पंचग्रदायक नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह खेत बोने से लेकर फसल कटने तक पाँच बार भिक्षु संघ को दान दिया करता था : खेत में बीज डालते समय, फल आने पर, फलों के भंडारण के समय, ऊखल में कूटते समय तथा पुनः बोरियों में भरते समय। इस प्रकार प्राप्त होने वाली वस्तु के प्रथम भाग का दान दिये बिना वह उसका उपभोग नहीं करता था। अतः लोग उसे पंचाग्रदायक कहते थे।

एक दिन शाक्य मुनि ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि ब्राह्मण और उसकी पत्नी अनागामी फल प्राप्त कर सकते हैं। अतः वे ब्राह्मण के घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए। ब्राह्मण बाहर दरवाजे की ओर पीठ करके भोजन कर रहा था। अतः उसने शास्ता को नहीं देखा। उसकी पत्नी ने सोचा कि अगर इसने शास्ता को देख लिया तो निश्चय ही यह अपना भोजन उनको दे देगा और मुझे फिर से इसके लिए भोजन तैयार करना होगा। अतः वह ब्राह्मण के बगल में इस प्रकार खड़ी हो गई कि वह शास्ता को न देख सके।

शास्ता जब तक भोजन प्राप्त नहीं करते थे, आगे नहीं बढ़ते थे। यह देखकर ब्राह्मणी हँस दी। तब ब्राह्मण को पता चला कि तथागत दरवाजे पर खड़े थे। वह तुरंत उनके पास गया, सादर प्रणाम किया, वंदना की और उन्हें अवशिष्ट भोजन देते हुए कहा, "भन्ते ! मैंने अभी आधा ही भोजन किया है। कृपया इसे ग्रहण करें।" तथागत ने कहा, "ब्राह्मण ! मुझे भोजन का हर भाग स्वीकार है। वह शेष हो या अवशेष, प्रथम हो, मध्यम हो या अंतिम - मैं सभी भाग लेता हूँ भले ही वह किसी का जूठन ही क्यों न हो ? हम तो दूसरों के दिए गए दान पर जीवित रहते हैं। दूसरों द्वारा दिये गए भोजन पर पलने वाला उस भोजन की न तो प्रशंसा करता है और न अवमानना। ऐसे ही साधक को अकच्छप के बुद्धिमान लोग 'मुनि' कहते हैं।" ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ कि शाक्य मुनि ने अवशिष्ट भोजन स्वीकार कर लिया।

फिर ब्राह्मण ने पूछा, "भन्ते ! भिक्षु किसे कहते हैं ? " शास्ता ब्राह्मण-ब्राह्मणी के पूर्व जन्म के बारे में जानते थे। अतः उन्होंने कहा, "जो नाम रूप में राग नहीं रखता, आसक्ति नहीं रखता, उनका चिंतन नहीं करता उसे ही 'भिक्षु' कहते हैं।"

तब शाक्य मुनि ने यह गाथा कही।

गाथा: मेत्ताविहारी यो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं।। 368।।

अर्थ: जो भिक्षु मैत्रीभाव से जीवन यापन करता है, बुद्ध के उपदेश में श्रद्धालु है, वह सभी संस्कारों का शमन करने वाले शांत एवं सुखद पद, निर्वाण को प्राप्त कर लेता है।

कौन निर्वाण प्राप्त करेगा ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक समय शाक्य-मुनि के अग्रणी शिष्य महाकात्यायन अवंति प्रदेश के कुररघर के पास वाले पर्वत पर साधना कर रहे थे वहाँ सोण कोटिकण्ण नामक एक उपासक ने महाकात्यायन में श्रद्धा व्यक्त कर उनसे प्रव्रज्या की प्रार्थना की। पर स्थविर ने प्रव्रज्या धर्म की कठिनाई समझाते हुए सलाह दी, "सोण ! प्रव्रज्या का जीवन बहुत ही कठिन है। उसमें एक शाम भोजन, एकाकी शय्या, सीमित चीवर मिलते हैं और कठिन धर्म साधना करनी पड़ती है।" सोण ने दो बार प्रार्थना की और स्थविर ने दोनों ही बार उसे समझाकर उसकी प्रार्थना टाल दी, परन्तु तीसरी बार बहुत आग्रह करने पर उन्होंने उसे प्रव्रज्या दे दी। तीन वर्षों तक वह साधना करता रहा। उसके बाद उसने जेतवन जाकर बुद्ध दर्शन की अभिलाषा प्रकट की और अपने उपाध्याय से अनुमति माँगी। उपाध्याय ने उसे अनुमति दे दी। फिर वह चारिका करता हुआ जेतवन पहुँचा और शास्ता को सादर प्रणाम कर शास्ता के आदेशानुसार उसने गन्धकुटी में ही विश्राम किया। रात्रि विश्राम के बाद प्रातः काल शास्ता ने उसे अट्ठकवर्ग (सुत्तनिपात) के सोलह सूत्रों को सुनाने के लिए कहा। सोण ने उनका सस्वर पाठ सुनाया। इस स्वरपाठ से शास्ता अति प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे साधुवाद दिया। शास्ता द्वारा दिया गया यह साधुवाद धरती से लेकर ब्रह्म लोक तक गूँज उठा।
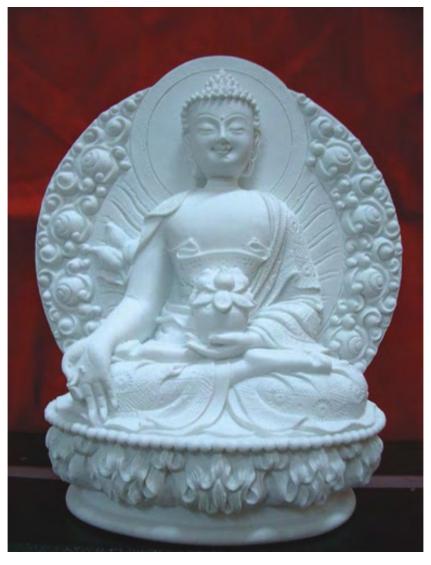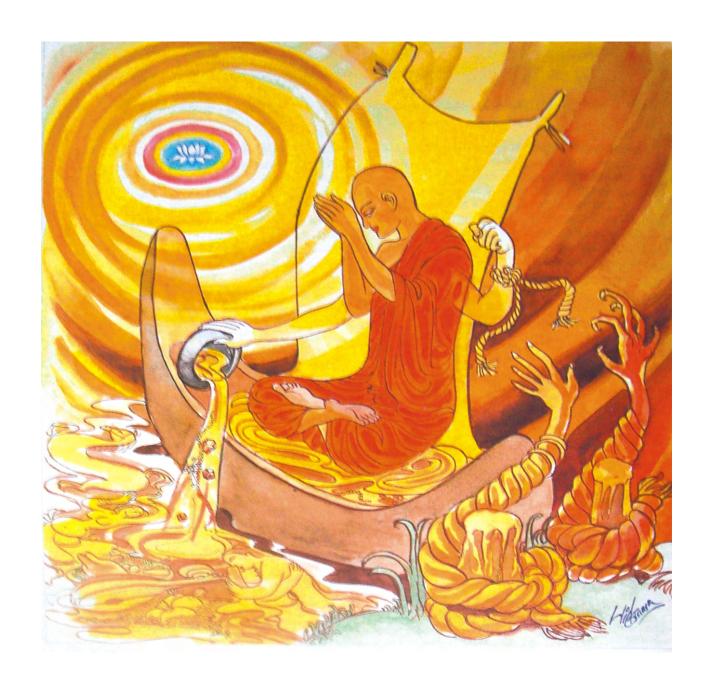
गाथा: सिञ्च भिक्खु इमं नावं, सित्ता ते लहुमेस्सति।
छेत्वा रागञ्च दोसञ्च, ततो निब्बानमेहिसि।। 369।।

अर्थ: हे भिक्षु ! इस आत्मभाव नाम की नाव को उलीचो। उलीचने पर यह नौका तुम्हारे लिए हल्की हो जायेगी। तब तुम सांसारिक राग और द्वेष को काटकर निर्वाण तक पहुँच सकोगे।

आत्मभाव नाम की नाव उलीचें
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

सोण स्थविर की माता जेतवन से एक सौ बीस योजन दूर कुररघर नगर में रहती थी। शाक्य मुनि का साधुवाद सुनकर उस घर में रहने वाले देवता ने भी साधुवाद दिया। इसे सुनकर माता बोली, "यह कौन है जो साधुवाद दे रहा है ?" "बहन मैं हूँ।" "तुम कौन ?" "तुम्हारे घर में निवास करने वाला तुम्हारा गृह देवता।" "तुमने आज तक तो किसी बात के लिए साधुवाद नहीं दिया। आज क्यों दे रहे हो ? " "मैं आपको साधुवाद नहीं दे रहा हूँ।" "तो किसको दे रहे हो ? " "आपके पुत्र स्थविर कोटिकर्ण सोण को।" "किस बात के लिए ? " उसने कौन सा अनोखा कार्य कर दिया है ? " "आज प्रातः आपके पुत्र ने शास्ता के सम्मुख बैठकर धर्मदेशना की। शास्ता आपके पुत्र की धर्मदेशना से अति प्रसन्न हुए तथा उसे साधुवाद दिया। उसी साधुवाद को सुनकर मैं भी साधुवाद दे रहा हूँ। तथागत का दिया हुआ यह साधुवाद धरती से लेकर ब्रह्मलोक तक गूँज उठा है। उसी से मैं भी अति प्रसन्न हूँ।" "परन्तु देव ! मेरे पुत्र ने ऐसा कौन सा आश्चर्यजनक कार्य कर दिया है ? शास्ता ने मेरे पुत्र को धर्मदेशना दी या मेरे पुत्र ने शास्ता को दी ? " "आपके पुत्र ने बुद्ध को धर्मदेशना दी।" 'मेरे पुत्र ने बुद्ध को धर्मदेशना दी' यह सोचकर स्थविर की माँ के शरीर में पंचविधि प्रीति का संचार हो गया। वह अपने पुत्र के किये पर अति प्रसन्न हुई।

गाथा: पञ्च छिन्दे पञ्च जहे, पञ्च चुत्तरि भावये।
पञ्चसङ्गातिगो भिक्खु, "ओघतिण्णो" ति वुच्चति।। 370।।

अर्थ: सत्काय दृष्टि, विचिकित्सा, शीलव्रत परामर्श, कामराग और व्यापाद- इन पाँच अवरणभागी संयोजनों को काटे, रूपराग, अरूपराग, मान, औद्धत्य और अविद्या- इन पाँच उर्ध्वभागीय संयोजनों को छोड़ दे, और तदुपरान्त इनके प्रहाण के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा- इन पाँच इन्द्रियों की भावना करे। जो भिक्षु पाँच आसक्तियों राग, द्वेष, मोह, मान और दृष्टि का अतिक्रमण कर चुका हो, वह काम भव, दृष्टि तथा अविद्या रूपी चार प्रकार की बाढ़ों को पार किया हुआ 'ओधतीर्ण' कहा जाता है।

तृष्णा रूपी बाढ़ को पार करने वाला कौन है ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

तब उपासिका ने विचार किया, "अगर मेरा पुत्र गंधकुटी में बैठकर शास्ता को धर्मश्रवण कर सकता है तो उचित ढंग से आग्रह करने पर मुझे भी धर्मोंपदेश दे सकता है। अतः जब मेरा पुत्र अगली बार यहाँ आयेगा तो मैं उससे धर्म कथा अवश्य सुनूँगी।"

शास्ता द्वारा साधुकार पाकर सोण स्थविर उत्साहित हुआ और उसने सोचा, "अब मुझे उपाध्याय द्वारा दिये गये ज्ञान को बाँटने का समय आ गया है।" अतः शास्ता के पास कुछ दिन रुककर, उनकी सेवा करने के बाद, उनकी अनुमति लेकर जेतवन से प्रस्थान कर गया और अपने उपाध्याय, कच्चान स्थविर के पास आ पहुँचा।

गाथा: झाय भिक्खु मा पमादो, मा ते कामगुणे रमेस्सु चित्तं।
मालोहगुळंगिलीपमत्तो, माकन्दि "दुक्खमिदं" ति डय्हमानो।। 371।।

अर्थ: हे भिक्षु ! ध्यान कर, प्रमाद मत कर, देख, तेरा चित्त भोगों के चक्कर में न फँसे। प्रमत्त होकर लोहे के गोले को मत निगल जा। ऐसा न हो 'जलते हुए चिल्लाकर तुझे रोना पड़े कि यह दु:ख है।'

भिक्षु ! सावधान ! सावधान !!
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

स्थविर दूसरे दिन सोण को लेकर भिक्षाटन के लिए निकले। वे उपासिका के घर के दरवाजे पर जा खड़े हुए। उपासिका ने उन दोनों को, विशेषकर पुत्र को, देखा तो अति प्रसन्न हुई। उन्हें सादर प्रणाम किया और आदर सहित अंदर बुलाकर भोजन कराया। भोजन कराते समय माता ने पुत्र से पूछा, "पुत्र ! क्या सचमुच तुमने गन्धकुटी में शास्ता के सम्मुख धर्म कथा कही है ? " "आपसे किसने कहा ? " "जब शास्ता तुम्हें साधुवाद दे रहे थे तो उसी समय गृहदेवता ने भी साधुवाद दिया था। मैंने उसके साधुवाद का कारण पूछा तो उसने पूरा प्रकरण कह सुनाया। जब से मैंने इस बात को जाना है तब से मेरे मन में तुमसे धर्म कथा सुनने की तीव्र इच्छा जाग उठी है। मैंने सोचा है कि अगर मेरा पुत्र शास्ता को धर्म कथा सुना सकता है तो फिर मेरे आग्रह करने पर वह मुझे भी सुना सकता है।" फिर माँ ने आग्रह किया, "तात् ! जो धर्म कथा तुमने शास्ता को सुनाई थी वही मुझे भी सुनाना।" सोण स्थविर ने माँ का आग्रह स्वीकार कर लिया।
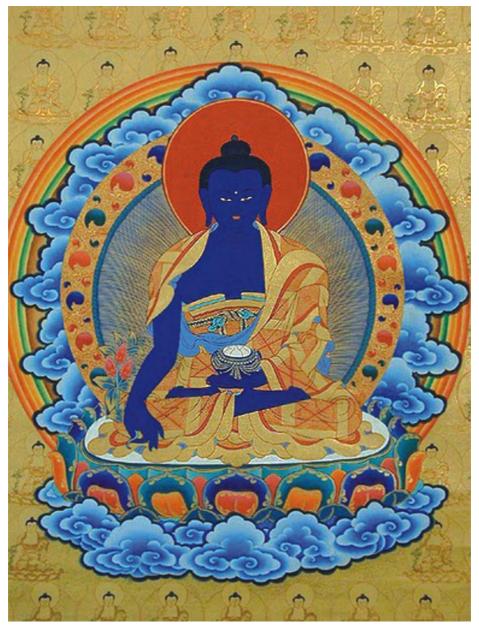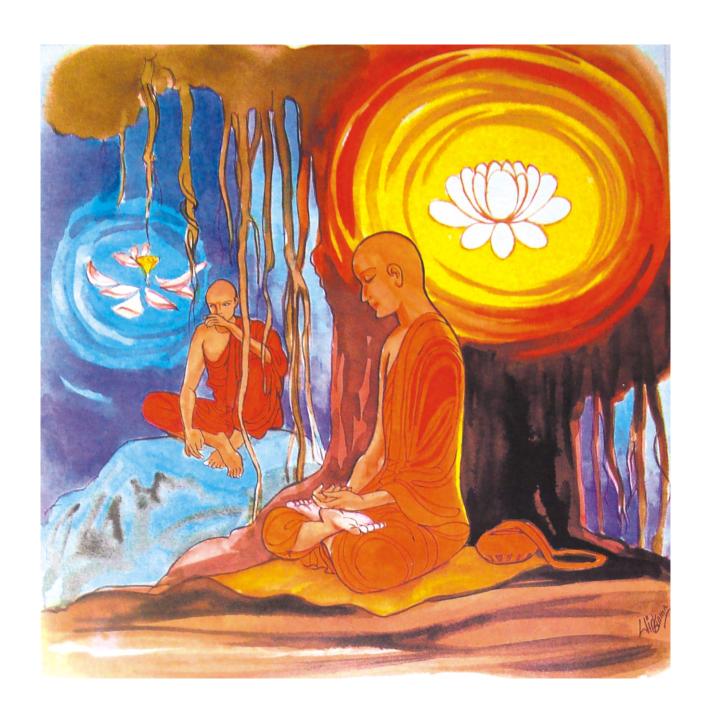
गाथा: नत्थि झानं अपञ्ञस्स, पञ्ञा नत्थि अझायतो।
यम्हि झानञ्च पञ्ञा च, स वे निब्बानसन्तिके।। 372।।

अर्थ: जिसको प्रज्ञा नहीं, उसे ध्यान (चित्त एकाग्र) नहीं होता। जिसे ध्यान नहीं होता उसे प्रज्ञा नहीं होती। जिसमें ध्यान और प्रज्ञा दोनों हैं, वही निर्वाण के निकट है।

ध्यान और प्रज्ञा द्वारा निर्वाण की प्राप्ति
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

अगले दिन सोण स्थविर के धर्म कथा की भेरी बजवाई गयी। माँ 'अपने पुत्र से धर्म कथा सुनने जाऊँगी' यह सोचकर , अपने घर पर एक दासी रखकर, पूरे परिवार के साथ नगर के मध्य में जा पहुँची जहाँ धर्म कथा होनी थी। अति सुन्दर मंडप में सजे हुए धर्मासन पर सोण विराजमान हुए और धर्म कथा प्रारंभ हो गयी।

जिस समय माता धर्म प्रवचन सुन रही थी, उस समय चोरों के एक बड़े गिरोह ने मौका का फायदा उठाकर उसके घर में सेंध मारकर चोरी करना शुरू कर दिया। उनका प्रधान धर्म स्थान पर जा पहुँचा कि अगर उपासिका चोरी की बात सुनकर अपनी गृह-रक्षा के लिए वापस चलती है तो वह उसे तलवार से वहीं मार देगा।
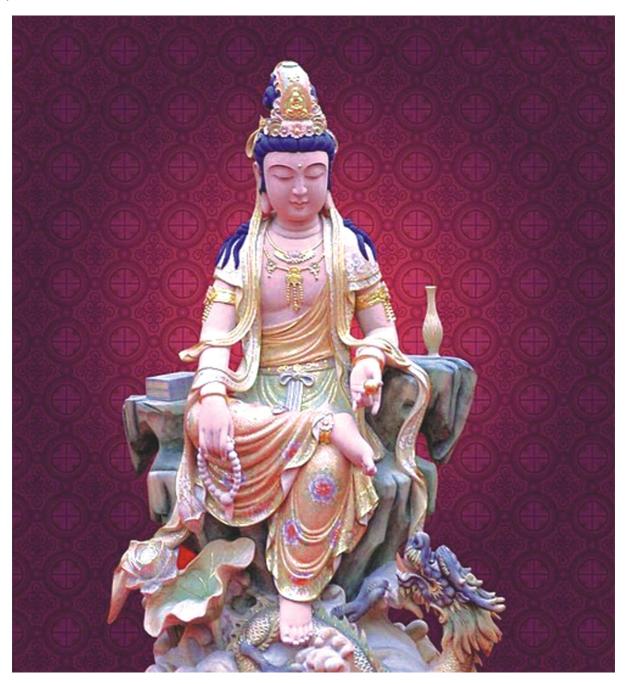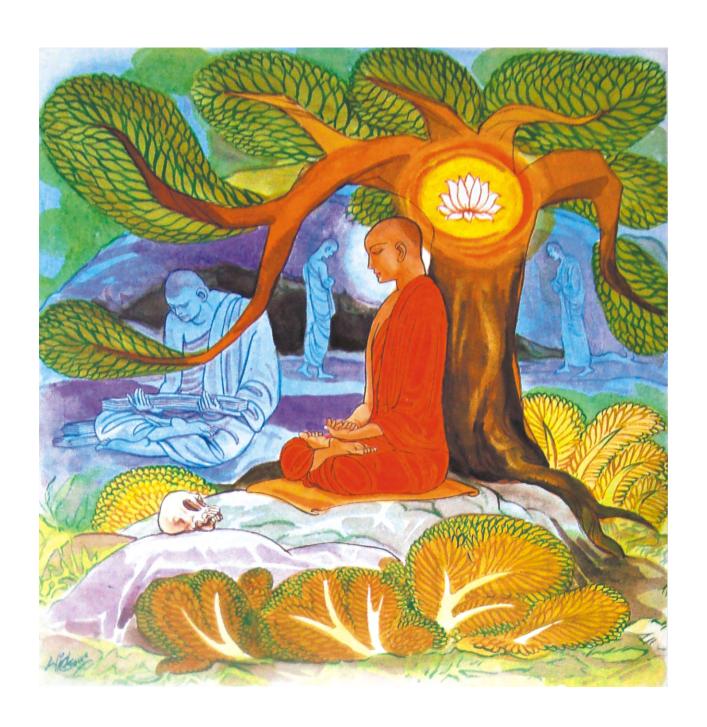
गाथा: सुञ्ञागारं पविट्ठस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
अमानुसी रति होति, सम्मा धम्मं विपस्सतो।।373।।

अर्थ: जो साधक शून्य आगार (एकान्त गृह, निर्जन स्थान) में रहता है, जिसका चित्त शान्त है, जिसने धर्म का सम्य साक्षात्कार कर लिया है उसे लोकोत्तर (दिव्य) आनन्द (अमानुषीरति) प्राप्त होता है।

लोकोत्तर (दिव्य) आनन्द कैसे प्राप्त करें ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों ने पहले सोने की मुहरों वाली तिजोरी खोली और मुहरें बटोरने लगे। उपासिका की दासी को जैसे ही चोरी का पता चला, वह दौड़ती हुई विहार पहुँची और मालकिन से कहा, "मालकिन ! चोरों ने सोने की मुहरों वाली तिजोरी खोल ली है और मुहरें बटोरकर ले जा रहे हैं।" उपासिका ने कहा, "चोरों को जितना धन ले जाना है, ले जाने दो। मैं अपने पुत्र से धर्म प्रवचन सुन रही हूँ। उसमें विघ्न मत डालो। वापस चली जा।" दासी वापस चली गयी। थोड़े समय के बाद चोर चाँदी वाली तिजोरी तोड़ने लगे। तब वह फिर दौड़ी-दौड़ी मालकिन के पास गई और कहा, "मालकिन ! चोरों ने चाँदी की मुहरों वाली तिजोरी खोल ली है और मुहरें बटोरकर ले जा रहे हैं।" तब उपासिका ने दासी को डाँट दिया और कहा, "अरे ! तू बार-बार मेरे पास क्यों आ रही है ? एक बार कह दिया न 'चोरों को जो ले जाना है ले जायें', तब तू हर बार आकर मुझे क्यों परेशान कर रही है ? देख नहीं रही है कि मैं धर्म कथा सुन रही हूँ। तुझे कह दिया है कि धर्म कथा छोड़कर नहीं जाऊँगी। इस बार अगर तुमने मुझे फिर तंग किया तो समझ लो, इसका फल क्या होगा। मुझे प्रेम से धर्म प्रवचन सुनने दो और तुम घर वापस चली जाओ।"
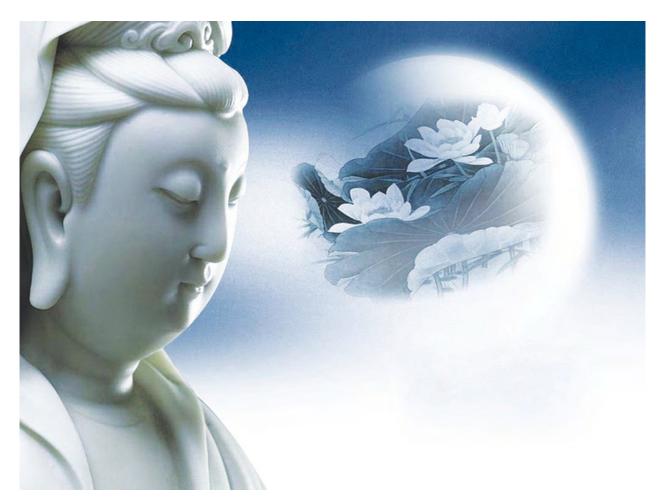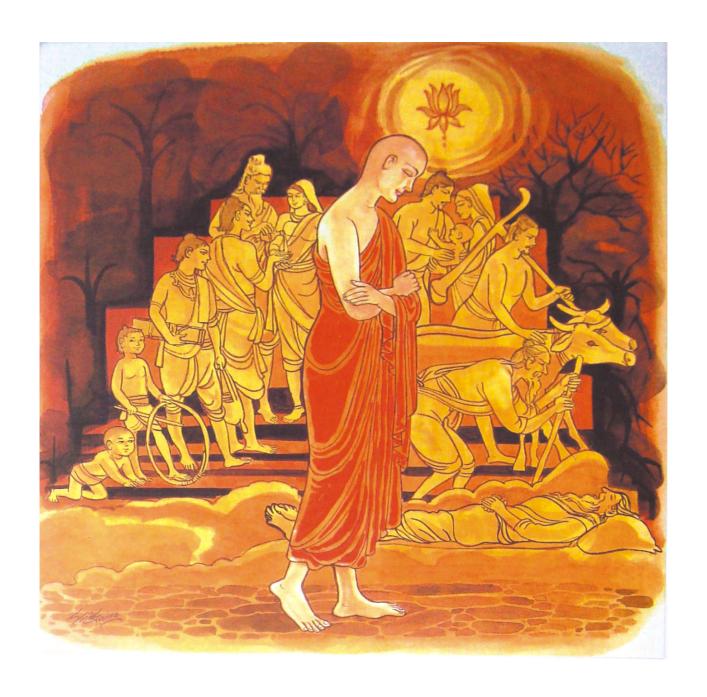
गाथा: यतो यतो सम्मसति, खन्धानं उदयब्बयं।
लभती पीतिपामोज्जं, अमतं तं विजानतं।। 374।।

अर्थ: मनुष्य जैसे-जैसे पाँच स्कन्धों (रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान) की उत्पत्ति और विनाश को देखता है, वैसे-वैसे वह ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत को प्राप्त करता है।

ज्ञानियों की प्रीति और प्रसन्नता रूपी अमृत कैसे प्राप्त करें ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों का सरदार यह सब सुन रहा था। सुनकर अवाक रह गया। लगा जैसे उसके मन-मन्दिर में किसी ने दीपक जला दिया हो। वह पश्चाताप करता हुआ सोचने लगा, "इतनी धर्म-परायण स्त्रियों के घर में चोरी करने वालों के ऊपर बिजली क्यों नहीं गिर जाती ? " वह वहाँ से दौड़ा-दौड़ा उपासिका के घर आया और अन्य चोरों को आदेश दिया, "उपासिका का सारा धन यथास्थान रख दो।" चोरों ने उसके आदेश से सारा का सारा धन यथास्थान रख दिया। यह सत्य है कि ऐसे धर्माचरण करने वालों की स्वयं धर्म ही रक्षा करता है। इस तरह भली भाँति आचरित धर्म उन्हें सुख देता है। धर्माचरण का यही महात्म्य है कि धर्म का आचरण करने वाले की कभी दुर्गति नहीं होती है।
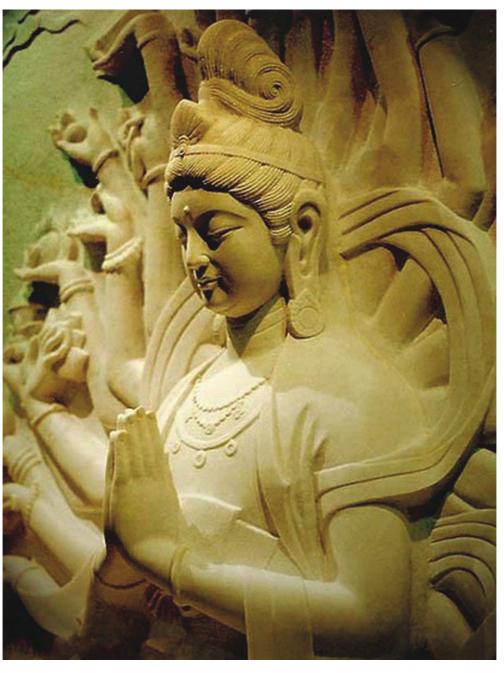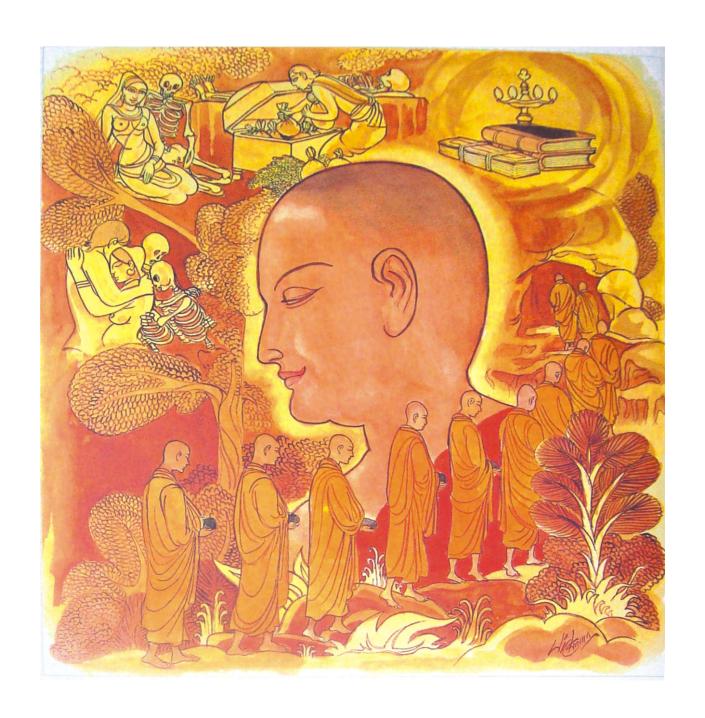
गाथा: तत्रायमादि भवति, इध पञ्ञस्स भिक्खुनो।
इन्द्रियगुत्ति सन्तुट्ठि, पातिमोक्खे च संवरो।। 375।।

अर्थ: बुद्धिमान भिक्षु को पहले करना होता है- इन्द्रिय संयम, सन्तोष और प्रतिमोक्ष की रक्षा (भिक्षु-नियमों का पालन), उसे चाहिए कि वह शुद्ध आजीविका वाले, आलस्य रहित, कल्याण मित्रों की संगति करे।

भिक्षु का कर्त्तव्य
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

चोरों के सरदार ने साथियों को समझाया, "मित्रों ! चलो वहाँ चलें जहाँ इससे भी अधिक मूल्यवान वस्तु उपलब्ध है, जिसे पाकर इस घर की मालकिन ने इस घर के सारे धन को छोड़ दिया। और जिसकी हमें खबर नहीं है।" सरदार की बात उन्हें जँच गई और सभी साथी दौड़ते-दौड़ते भिक्खु कुटिकण्ण सोण से धर्म प्रवचन सुनने पहुँच गए।

स्थविर ने मध्य रात्रि में धर्म कथा समाप्त की और आसन से उतरे। तब चोरों का सरदार उपासिका के पैरों पर गिर पड़ा और कहा, "मुझे क्षमा करो माता ! " "किस बात के लिए ? " "मैं यहाँ तुम्हारी हत्या करने के प्रयोजन से बैठा था।" "अच्छा चलो, माफ किया।" बाकी चोरों ने भी माफी माँगी। उपासिका ने सबों को माफ कर दिया।

गाथा: मिते भजस्सु कल्याणे, सुद्धाजीवे अतन्दिते।
पटिसन्थारवुत्यस्स, आचारकुसलो सिया।
ततो पामोज्जबहुलो, दुक्खस्सन्तं करिस्सति।। 376।।

अर्थ: वह मैत्रीपूर्ण स्वागत (सेवा-सत्कार) करने वाला होवे। आचार पालन में कुशल (आचारवान्) हो। आनन्दित होकर दुःख अंत करने वाला हो।

भिक्षु दुःख का अंत कैसे करेगा ?
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा

तब चोरों के समूह ने कहा, "माताजी ! अगर आपने हमें माफ कर दिया तो फिर अपने पुत्र से हमें प्रव्रजित कराइये।" तब उपासिका ने सोण स्थविर को प्रणाम कर निवेदन किया, "भन्ते ! ये चोर मेरे गुणों और आपकी धर्मकथा से प्रभावित होकर प्रव्रजित होना चाहते हैं। आप कृपया इन्हें प्रव्रजित कर दें।" तब स्थविर ने उन्हें प्रव्रज्या दिला दी। वे सभी पर्वत की ओर चले गए और भिन्न-भिन्न वृक्षों के नीचे बैठकर धर्मसाधना करने लगे।

शास्ता एक सौ बीस योजन दूर जेतवन विहार में विराजमान थे। अपनी दृष्टि से सब देख रहे थे। इस चर्या से प्रसन्न होकर उन्होंने ये गाथायें कहीं।

गाथा: वस्सिका विय पुप्फानि, मद्दवानि पमुञ्चति।
एवं रागञ्च दोसञ्च, विप्पमुञ्चेथ भिक्खवो।। 377।।

अर्थः जैसे जूही अपने कुम्हलाये फूलों को गिरा देती है, उसी प्रकार भिक्षुओं ! तुम भी राग और द्वेष को छोड़ दो।

कुम्हलाये फूलों की तरह राग द्वेष छोड़ देना
पाँच सौ भिक्षुओं की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार पाँच सौ भिक्षु श्रावस्ती में शाक्य मुनि से साधनोपाय कर्मस्थान ग्रहण कर जंगल में साधना करने चले गये। वहाँ श्रमण धर्म (धर्मसाधना) का पालन करते हुए उन्होंने देखा कि जूही के फूल जो सुबह में खिलते थे, शाम होते-होते मुरझा जाते थे और अंत में अपनी डाली से धरती पर गिर जाते थे। इस प्रक्रिया को देखकर भिक्षुओं ने आपस में मनन किया, "हम भी क्लेशों से मुक्ति के लिए कठोर साधना करेंगे और जूही के फूलों के कुम्हला कर शाखा से टूटकर गिरने से पहले ही राग आदि विकारों से मुक्त हो जायेंगे।" ऐसा सोचकर वे कठोर अभ्यास करने लगे।

शास्ता जेतवन विहार में वास कर रहे थे। उन्होंने अपनी प्रज्ञा चक्षु से इन भिक्षुओं की मनोदशा देखी। उनका निश्चय देखकर उन्हें उत्साहित किया, "हाँ भिक्षुओं ! प्रत्येक साधक भिक्षु को निश्चय ही फूलों की डाली से गिरने के पहले ही अपने चित्त को राग आदि से मुक्त कर लेना चाहिए। जैसे जूही कुम्हलाये फूलों को छोड़ देती है वैसे ही भिक्षुओं ! राग और द्वेष को छोड़ दो।"

गन्धकुटी से ही दिव्य प्रकाश भेजकर शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: सन्तकायो सन्तवाचो, सन्तवा सुसमाहितो।
वन्तलोकामिसो भिक्खु, "उपसन्तो" ति वुच्चति।। 378।।

अर्थः जिसका शरीर शान्त है, जिसकी वाणी शांत है, जिसका मन शान्त है, जो समाधि युक्त है, जिसने लौकिक भोगों को छोड़ दिया है, वह भिक्षु उपशान्त कहलाता है।

उपशान्त भिक्षु कौन है ?
शान्तकाय थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शान्तकाय स्थविर बहुत ही शांत स्वभाव का था । उसके हाथ, पैर तथा शरीर के अन्य अंगों से चंचलता के भाव कभी प्रकट नहीं हुए। किसी ने भी उसे अंगड़ाई लेते हुए नहीं देखा था। वस्तुत: वह पिछले जन्म में सिंह योनि से निकला था। अत: सिंह के सभी गुण उसके अन्दर दिखाई देते थे।

सिंह की विशेषता है कि वे एक बार भर पेट भोजन कर पूरे सप्ताह सोये रह सकते हैं। जब उनका शरीर उन्हें स्वच्छ लगता है तभी वे गुफा से निकलत हैं।

अपने पूर्व जन्म के गुणों के कारण वह सदैव शान्त रहता था। कभी भी शरीर के किसी भाग में चंचलता का नामों निशान नहीं आने देता था। भिक्षुगण एक बार शास्ता के पास गए और उसके शरीर के सौन्दर्य की चर्चा करते हुए बोले, "भन्ते ! हमने आज तक किसी का भी ऐसा स्वच्छ और सुन्दर शरीर नहीं देखा है। इसके बैठने पर इसके हाथ-पैर आदि से हमने निरर्थक चेष्टायें कभी नहीं देखी। यह कभी अंगड़ाई भी नहीं लेता।"

यह सब सुनकर शाक्य-मुनि ने कहा, "भिक्षुओं ! भिक्षु को शान्तकाय स्थविर के समान ही अपनी शरीरिक चेष्टा शान्त रखते हुए रहना चाहिए।"
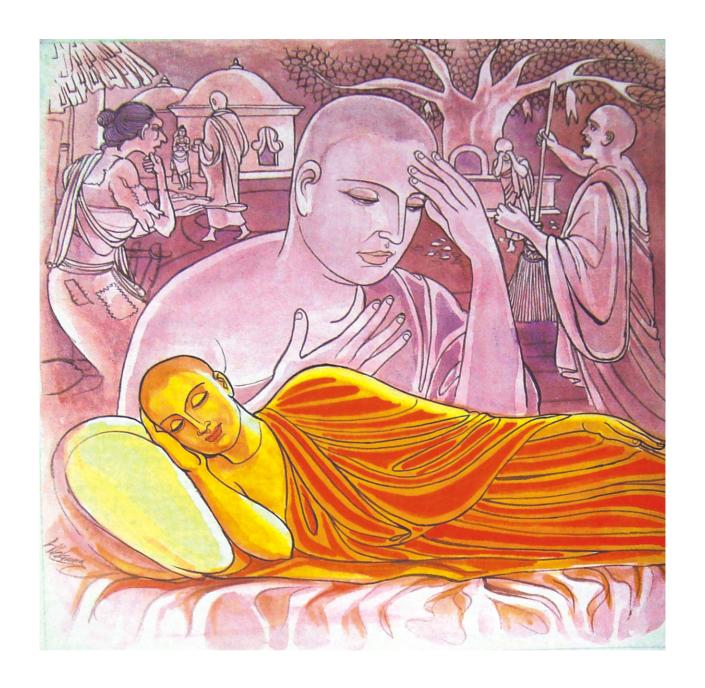
गाथा: अत्तना चोदयत्तानं, पटिमंसेथ अत्तना।
सो अत्तगुत्तो सतिमा, सुखं भिक्खु विहाहिसि।। 379।।

अर्थ: जो स्वयं अपने आप को प्रेरित करेगा, जो अपनी परीक्षा स्वयं लेगा, वह आत्म-संयमी, स्मृतिमान् भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा।

कौन भिक्षु सुखपूर्वक रहेगा ?
नंगलकुल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

नंगलकुल- दीन और हीन, दरिद्र पुरुष दूसरों की नौकरी कर जीवन यापन किया करता था। किसी दिन एक भिक्षु ने उसे चिथड़ों में लंगोटी पहने हुए, कन्धे पर हल रखे हुए खेत की ओर जाते देखा। भिक्षु ने उससे पूछा, "क्या इस तरह गरीबों की जिन्दगी जीने से अच्छा नहीं है कि प्रव्रज्या ग्रहण कर ली जाए। " किसान ने कहा, "मुझ गरीब को कौन प्रव्रजित करेगा ? " "मैं करूँगा।" "ठीक है भन्ते ! आप अगर प्रव्रज्या देंगे तो प्रव्रजित हो जाऊँगा। आप कृपया मुझे प्रव्रजित कर दें।" तब स्थविर उसे जेतवन ले आये, अपने हाथों से उसको स्नान कराया और आँगन में बैठाकर उसे प्रव्रज्या दे दी। उसकी पहनी हुई लंगोटी और हल (नंगल) को आंगन से थोड़ी दूर एक पेड़ से लटका दिया। चूँकि भिक्षु हल (नंगल) लेकर आया था। अतः उपसम्पदा प्राप्ति के बाद लोग उसे नंगलकुल नाम से जानने लगे।

प्रव्रज्या के कुछ दिनों बाद उसके मन में उदासी छाने लगी। उसको गृहस्थ जीवन के दिन याद आने लगे। उसने सोचा गृहस्थी में वापस चलता हूँ। यह सोचकर वह हल लेने के लिए उस वृक्ष के पास पहुँचा। लेकिन वहाँ पहुँच कर उसके मन ने उसे धिक्कारा, "अरे निर्लज्ज ! गेरुआ वस्त्र धारण करने के बाद पुनः गृहस्थ आश्रम में जाकर जीवन जीना चाहता है। क्या यह बुद्धिमता का कार्य है ?"

यह सोचकर उसे अपने आप से ग्लानि होने लगी और उसका चित्त कुछ हल्का हुआ। वह अपनी कुटिया में वापस आ गया। कुछ दिनों बाद उसके मन की फिर वही दशा हुई। इस बार वह फिर उस वृक्ष के नीचे बैठ गया और अपने आप को समझाकर वापस आ गया। यही प्रक्रिया बार-बार चलती रही।
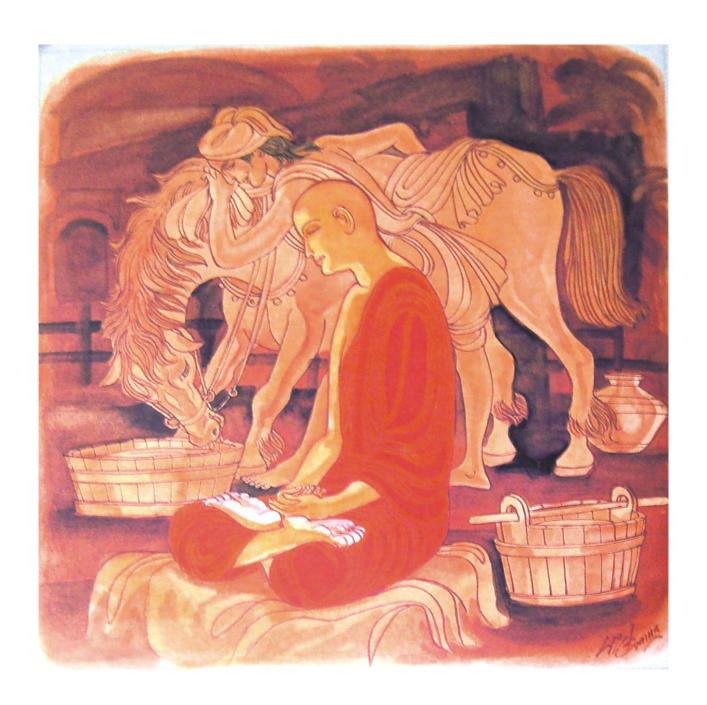
गाथा: अत्ता हि अत्तनो नाथो, को हि नाथो परो सिया।
अत्ता हि अत्तनो गति।
तस्मा संयमयत्तानं, अस्सं भद्रंव वाणिजो।। 380।।

अर्थ: व्यक्ति अपना स्वामी आप है, अपनी गति (शरण) आप है, इसलिए अपने आप को उसी तरह संयत में रखे जैसे घोड़ों का व्यापारी अच्छे घोड़े को रखता है।

अपने आप को संयत में रखें
नंगलकुल थेर की कथा

साथ में रह रहे मित्र भिक्षुओं से नहीं रहा गया। उन्होंने एक दिन नंगलकुल से पूछ ही लिया, "आयुष्मान् नंगलकुल ! तुम उस वृक्ष के पास बार-बार क्या करने जाते हो ?" भिक्षु ने उत्तर दिया, "अपने आचार्य से मिलने जाता हूँ।"

यह सिलसिला चलता रहा। नंगलकुल ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। अब उसे गृहस्थ आश्रम में जाने की इच्छा नहीं होती थी। अतः उसने उस वृक्ष की ओर जाना बंद कर दिया। भिक्षुओं ने उससे मजाक किया, "नंगलकुल क्या हो गया है ? आजकल अपने आचार्य से मिलने नहीं जाते हो ? " "हाँ भन्ते ! यह सच है कि अब मैं आचार्य से मिलने नहीं जाता। अब मुझे आचार्य की जरूरत नहीं रह गई है। जब जरूरत थी तब जाता था।" भिक्षुओं को लगा कि यह झूठ बोल रहा है। अतः वे शास्ता के पास गये और उनसे कहा, "भन्ते ! नंगलकुल झूठ बोल रहा है। झूठ में आत्म-प्रशंसा कर रहा है।" तब शाक्य मुनि ने उन्हें वस्तु स्थिति स्पष्ट करते हुए बताया, "नंगलकुल झूठ नहीं बोल रहा है। इस शिष्य ने अपने को बार-बार समझाया है और इस प्रकार समझाते-समझाते अर्हत्व प्राप्त कर लिया है। उसने प्रव्रज्या के लक्ष्य की प्राप्ति कर ली है।

यह कहकर शाक्य मुनि ने ये दो गाथायें कहीं।

गाथा: पामोज्जबहुलो भिक्खु, पसन्नो बुद्धसासने।
अधिगच्छे पदं सन्तं, सङ्खारूपसमं सुखं।। 381।।

अर्थ: जो भिक्षु खूब प्रसन्नचित रहता है, जो बुद्ध के उपदेश में श्रद्धावान है, जिसने सभी संस्कारों का शमन कर लिया है, वह सुखस्वरूप शान्त-पद को प्राप्त करता है।

सुखस्वरूप शान्त-पद कैसे प्राप्त करें ?
वक्कलि स्थविर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

श्रावस्ती में वक्कलि नाम का एक ब्राह्मण पुत्र था। एक दिन शाक्य मुनि जब भिक्षाटन के लिए जा रहे थे तो उनके दिव्य रूप को देख कर उसका मन श्रद्धा से भर गया। बुद्ध के प्रति उमड़ी श्रद्धा से उसे प्रव्रजित हो जाने का विचार आया कि अगर प्रव्रज्या धारण कर लूँगा तो सदैव शास्ता के दर्शन होते रहेंगे। ऐसा विचार कर उसने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

प्रव्रज्या के दिन से ही वक्कलि ध्यान साधना पर ध्यान न देकर शास्ता के वाह्य रूप को ही देखा करता था। पहले तो उसे अपरिपक्व जान बुद्ध ने उसे कुछ नहीं कहा। पर बाद में जब उन्हें लगा कि इसमें परिपक्वता आ गई है तो फिर एक दिन बुलाकर उससे कहा, "वक्कलि ! शरीर के वाह्य रूप को देखने से क्या लाभ ? मेरे पास बने रहने से क्या लाभ ? जो धर्म को देखता है वह स्वतः ही मुझे देख लेता है। अतः मेरी काया को न देखकर धर्म पर ध्यान दो, ध्यान-साधना में मन लगाओ।"

शास्ता के इस प्रकार समझाने और उपदेश देने पर भी वक्कलि पर कोई असर नहीं पड़ा। तब शास्ता को लगा कि उसे झटका दिए बिना काम नहीं चलेगा। कभी-कभी कठोरता में भी मृदुलता छिपी होती है। अतः वर्षोपनायिका के दिन बुद्ध ने वक्कलि से कहा, "तू मेरे सामने से दूर हट जा।" ऐसा कहकर उन्होंने वक्कलि से बातचीत करना बंद कर दिया। वक्कलि को इस बात का बहुत दुःख हुआ। अतः आत्महत्या करने के विचार से वह गृद्धकूट पर्वत पर जा पहुँचा।

शास्ता ने उसकी मनःस्थिति जानकर उसकी ओर प्रकाश की दिव्य ज्योति बिखेर दी। इससे उसके अन्दर का शोक समाप्त हो गया। जैसे सूखे तड़ाग में जल भर दिया जाता है उसी प्रकार तथागत ने उसके मन में सात्विक प्रीति भर दी। फिर उसे सम्बोधित कर यह गाथा कही।

गाथा: यो हवे दहरो भिक्खु, युञ्जति बुद्धसासने।
सोमं लोकं पभासेति, अब्भा मुत्तोव चन्दिमा।। 382।।

अर्थ: जो भिक्षु कम उम्र में शाक्य मुनि के उपदेशों को हृदयंगम कर लेता है वह इस संसार में अपना प्रिय आध्यात्मिक ज्ञान प्रकाश उसी प्रकार फैला देता है जैसे मेघमुक्त चन्द्रमा आकाश को प्रकाशित करता है।

अर्हत्व : आयु से क्या लेना-देना ?
सुमन सामनेर की कथा

स्थान : पूर्वाराम, श्रावस्ती

स्थविर अनुरूद्ध के एक प्रिय शिष्य थे - सामनेर सुमन। एक बार उनके गुरू जब बीमार थे तो हिमालय के अनवतप्त झील का जल लाये थे, जो वहाँ से बहुत दूर थी। अपने ऋद्धिबल के द्वारा उन्होंने इसे सम्पादित किया था। यह वही सामनेर थे जो सात वर्ष की उम्र में श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में आये थे और अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। उस समय उसके भिक्षुगण मित्र उसके कान, हाथ आदि पकड़कर पूछा करते थे, "सामनेर ! दु:खी तो नहीं हो ? उदास तो नहीं हो ? "

शाक्य-मुनि ने यह सब देखा तो सबों के सामने सामनेर की शक्ति का प्रदर्शन कराया। आनन्द थेर को बुलाकर कहा, "मैं अनवतप्त झील के जल से पैर धोना चाहता हूँ। किसी को भेजकर एक घड़ा पानी मँगा लो।" आनन्द थेर ने यह बात सभी सामनेरों को कही। सामनेरों में कुछ तो असमर्थ थे। अत: उन्होंने स्वीकृति नहीं दी। उनमें जो अर्हत् थे उन्हें मालूम था कि तथागत सुमन सामनेर को ही भेजना चाहते हैं। अत: उनमें से कोई जल लाने के लिए तैयार नहीं हुआ।

अंत में स्थविर आनंद ने सुमन को जल लाने के लिए कहा। वह आकाशमार्ग से बड़े घड़े में जल लेकर आ गए। जब वे आकाशमार्ग से आ रहे थे तो उनकी ओर इशारा कर शास्ता ने भिक्षुओं से कहा, "जो धर्म का अभ्यास करता है वह इसी प्रकार का ऋद्धिबल प्राप्त करता है- भले ही वह उम्र में कितना भी छोटा क्यों न हो।" ऐसा कहकर उन्होंने सुमन सामनेर की बड़ी प्रशंसा की।

सुमन के आने पर पूछा, "तू कितने वर्ष का है ? " "सात वर्ष का भन्ते ! "

"अच्छा आज से तू भिक्षु होगा", बुद्ध ने कहा। फिर उन्होंने यह गाथा कही।

DHAMMAPADA
BHIKKHU VAGGA

सच्चा ब्राह्मण कौन ?
धम्मपद
ब्राह्मण वर्ग
गाथा और कथा
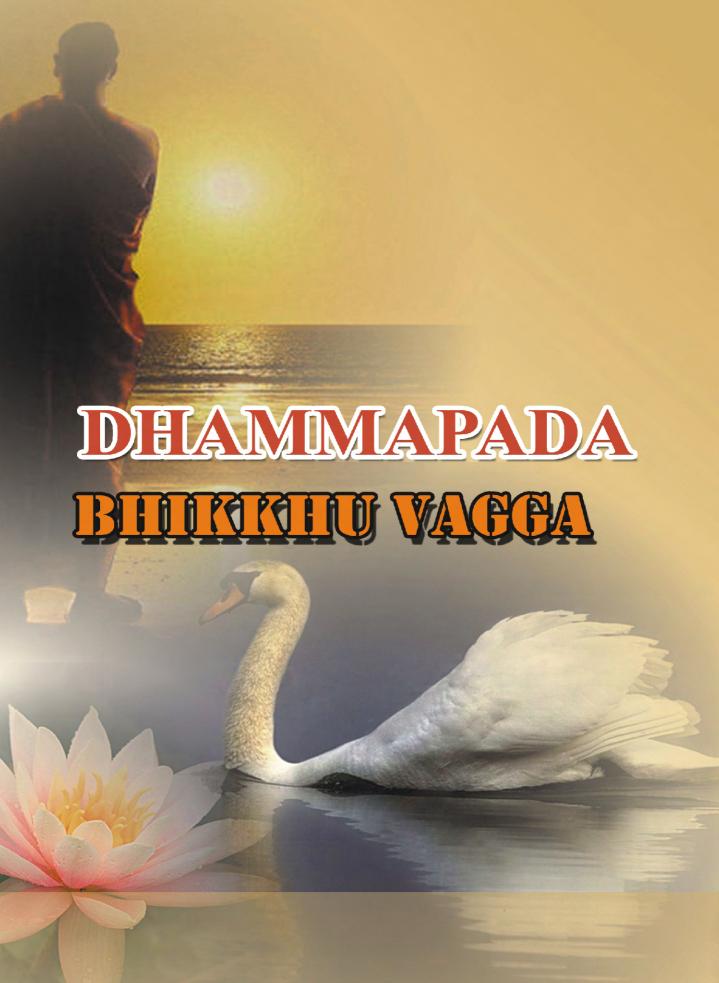
सच्चा ब्राह्मण कौन ?

धम्मपद

ब्राह्मण वर्ग

गाथा और कथा

संस्कारक
हृषीकेश शरण

विषय सूची

ब्राह्मण वर्ग

गाथा: छिन्द सोतं परक्कम्म, कामे पनुद ब्राह्मण।
सङ्खारानं खयं ञत्वा, अकतञ्ञूसि ब्राह्मण।। 383।।

अर्थः हे ब्राह्मण (भिक्षु) ! तृष्णारूपी स्त्रोत को काट दो, पराक्रम करो और कामनाओं को दूर कर दो। संस्कारों के क्षय को जानकर अकृत (निर्वाण) कर साक्षात्कार कर लो।

तृष्णा रूपी जड़ को काट निर्वाण का साक्षात्कार कर लें
अति श्रद्धालु ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक अति श्रद्धालु ब्राह्मण प्रतिदिन सोलह भिक्षुओं को भोजन दान दिया करता था। जब भिक्षु उसके घर आते तो वह कहता, "पधारें अर्हत् ! बैठें अर्हत् !" आदि-अदि। इस प्रकार वह सभी भिक्षुओं को 'अर्हत्' कहकर सम्बोधित किया करता था। जो भिक्षु अर्हत् थे उन्हें लगता था कि यह कैसे जान गया है कि हम अर्हत् हैं ? दूसरी ओर जो भिक्षु अर्हत् नहीं थे उन्हें लज्जा आती थी कि उन्हें अर्हत् कहकर सम्बोधित किया जाता है। यह सब सोचकर एक दिन कोई भी भिक्षु उस ब्राह्मण के घर भोजन प्राप्त करने नहीं गया।

ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ। वह जेतवन गया। शाक्य-मुनि से मिलकर अपना दुःखड़ा कह सुनाया। तथागत ने भिक्षुओं को बुलाकर पूछा कि वे आज भोजन ग्रहण करने क्यों नहीं गए। भिक्षुओं ने उन्हें ब्राह्मण द्वारा 'अर्हत्' सम्बोधित किये जाने की बात बताई। शास्ता ने उनसे पूछा कि जब उन्हें 'अर्हत्' सम्बोधित किया जा रहा था तो क्या वे गौरवान्वित महसूस कर रहे थे? भिक्षुओं ने कहा, "ऐसी कोई बात नहीं थी।" तब शास्ता ने उन्हें समझाया, "अगर ब्राह्मण के 'अर्हत्' कहने से तुम गौरवान्वित महसूस नहीं कर रहे थे तब तुम विनय के नियमों का उल्लंघन नहीं कर रहे थे। सच बात तो यह है कि वह ब्राह्मण भिक्षुओं के प्रति अति श्रद्धावान है। अतः वह तुम्हें अर्हत् कहकर संबोधित करता है। इसमें कोई बुराई नहीं है। अच्छा होगा कि तृष्णा के स्रोतों को काटकर तुम सचमुच अर्हत हो जाओ।"

ऐसा समझाते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।

गाथा: यदा द्वयेसु धम्मेसु, पारगू होति ब्राह्मणो।
अथस्स सब्बे संयोगा, अत्थं गच्छन्ति जानतो।। 384।।

अर्थ: जब कोई क्षीणास्त्रव ब्राह्मण (भिक्षु) इन दो धर्मों शमथ और विपश्यना (चित्त संयम और भावना) में पारंगत हो जाता है तब उस ज्ञानी साधक के सभी सांसारिक बंधन नष्ट हो जाते हैं।

शमथ और विपश्यना : बंधन दूर करने के उपाय
बहुत सारे भिक्षुओं की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

शाक्य मुनि जेतवन विहार में रह रहे थे। एक दिन अन्य स्थानों से आये तीस दिशावासिक भिक्षु उन्हें सादर प्रणाम कर एक तरफ बैठ गए। स्थविर सारिपुत्त ने अपनी अन्तर्दृष्टि से देखा कि इन भिक्षुओं में अर्हत्व प्राप्त करने की संभावना है। अत: शाक्य मुनि के पास खड़े होकर इन भिक्षुओं की साधना में मदद करने तथा उनकी प्रगति की गति को बढ़ाने के उद्देश्य से प्रश्न किया, "भन्ते ! आप दो धर्मों की बात करते हैं। वे दो धर्म क्या हैं ? " शास्ता ने समझाया, "सारिपुत्त ! ये दो धर्म 'शमथ' एवं 'विपश्यना' नाम से जाने जाते हैं। शमथ संकल्प से पाई गई समाधि है। यह योग, विधि-विधान तथा यत्न कर पाई जा सकती है। यह लौकिक समाधि है। इसमें बाहर से तो सब हो जाता है, लेकिन भीतर में कुछ कमी रह जाती है।

विपश्यना संपूर्ण समाधि है। विपश्यना में बाहर-भीतर एक जैसा हो जाता है। पुरुष रसमय हो जाता है। शमथ लौकिक समाधि है तो विपश्यना अलौकिक समाधि है। जो इन धर्मों को जान लेता है वह भवसागर के पार हो जाता है।"

ऐसा कहते हुए शास्ता ने यह गाथा कही।
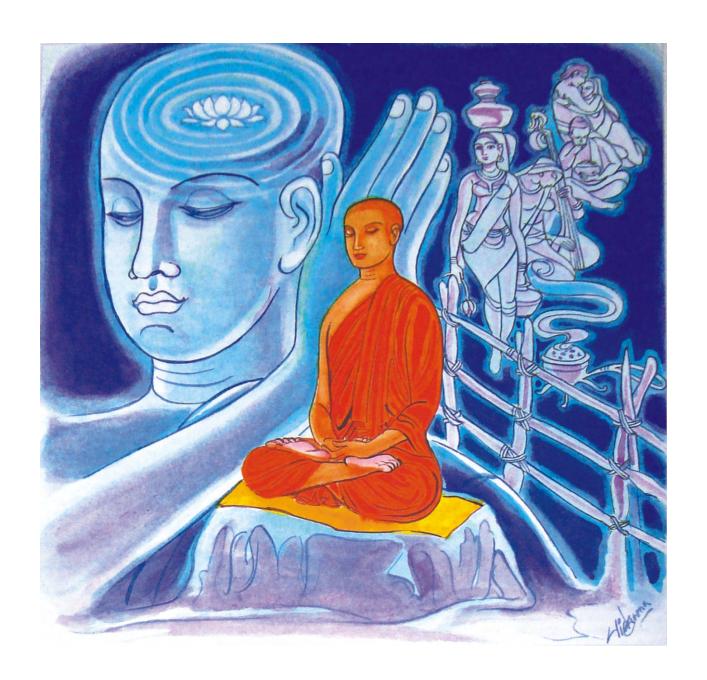
गाथा: यस्स पारं अपारं वा, पारापारं न विज्जति।
वीतद्दरं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।385।।

अर्थ: जिसके लिए न इस पार (किनारा) का महत्व रह गया है और न उस पार का और न जिसके लिए पार-अपार- दोनों का ही कोई महत्व रह गया है, वैसे निर्भय, संसार से अनासक्त, वीतरागी क्षीणास्त्रव भिक्षु को ही मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

ब्राह्मण किसे कहेंगे ?
मार की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक दिन मार ने साधारण मनुष्य का रूप धारण किया और शास्ता के सामने जाकर प्रश्न करने लगा, "भन्ते ! आप अपने उपदेशों में प्राय: 'पार', 'पार' शब्द का व्यवहार करते हैं। 'पार' से आपका क्या अभिप्राय है ? 'पार' किसे कहते हैं ? " शाक्य मुनि ने प्रश्नकर्त्ता को पहचान लिया और कहा, "अरे पापी दुष्ट ! तुझे 'पार' से क्या मतलब है ? 'पार' का अर्थ तू कैसे समझ पायेगा ? 'पार' का अर्थ 'उस किनारे' से है जहाँ जीवन मुक्त, अर्हत् ही पहुँच सकते हैं, जिसे वीतरागी ही जान सकते हैं और वहाँ पहुँच सकते हैं। इन्द्रियों के अनुभव पार हैं तथा मन के अनुभव अपार हैं। जिसके पार (भीतर के छह आयतन- आँख, कान, नाक, जीभ, काया और मन), अपार (बाहर के छह आयतन- रूप, शब्द, गंध, रस, स्पर्श और धर्म) या पार-अपार (ये दोनों ही, अर्थात् 'मैं', 'मेरे' का भाव) नहीं हैं, जो निर्भय और अनासक्त है वही ब्राह्मण (भिक्षु) कहलाता है।
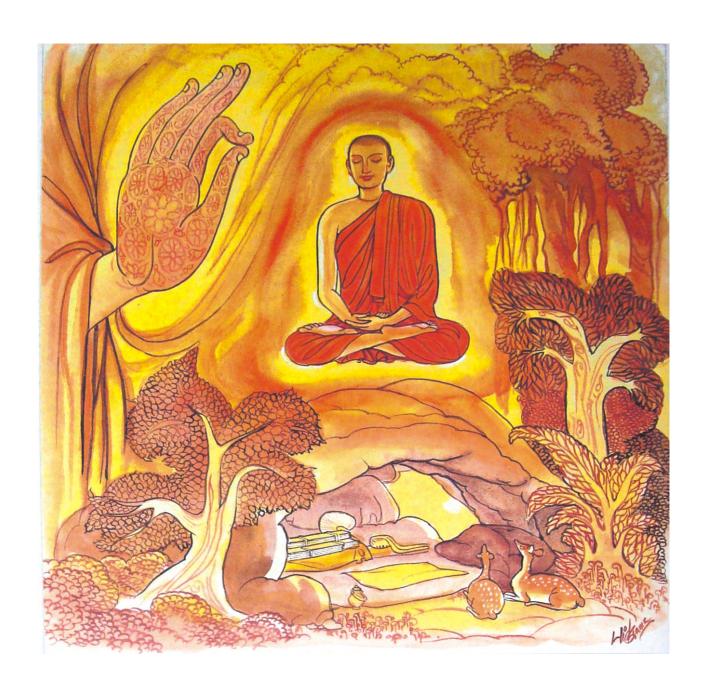
गाथा: झायिं विरजमासीनं, कतकिच्चमनासवं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 386।।

अर्थ: जो ध्यानी (ध्यान करने वाला है), जो रजोगुण रहित है, जो स्थिर आसन वाला है, जो अपने सभी कृत्यों को पूर्ण कर चुका है जो आस्रव, चित्तविकार, से रहित है, जो श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त कर चुका है, ऐसे साधक पुरुष को मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।"

ब्राह्मण कौन है ?
किसी ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार श्रावस्ती निवासी एक ब्राह्मण ने चिंतन किया कि "शाक्य मुनि अपने कई शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहकर संबोधित करते हैं। मैं भी तो जाति तथा गोत्र से ब्राह्मण हूँ। अतः मुझे भी 'ब्राह्मण' कहा जाना चाहिए। मुझे 'ब्राह्मण' क्यों नहीं कहा जा सकता ? " ऐसा सोचकर वह शास्ता के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे अपने मन की बात बतलाई।

अपने उत्तर में बुद्ध ने स्पष्ट किया, "केवल जाति या गोत्र के आधार पर मैं किसी को 'ब्राह्मण' संबोधित नहीं कर सकता। जिसने अपने आप को जीत लिया है, जीवन के प्रयोजन को पा लिया है, जो अर्हत् हो चुका है, उस आध्यात्मिक व्यक्ति को ही मैं 'ब्राह्मण' कह सकता हूँ।"

गाथा: दिवा तपति आदिच्चो, रत्तिमाभाति चन्दिमा।
सन्नद्धो खत्तियो तपति, झायी तपति ब्राह्मणो।
अथ सब्बमहोरत्तिं, बुद्धो तपति तेजसा।। 387।।

अर्थ: सूर्य दिन में चमकता है, चन्द्रमा रात में। क्षत्रिय जब युद्ध में जाने के लिए कवच पहनता है तब चमकता है, क्षीणास्त्रव भिक्षु (ब्राह्मण) समाधिनिष्ठ होने पर चमकता है पर बुद्ध अपने अलौकिक तेज से सर्वदा देदीप्यमान रहते हैं।

बुद्ध सदैव देदीप्यमान रहते हैं
आनन्द स्थविर की कथा

स्थान : मिगारमातु प्रासाद

महाप्रवारणा के अवसर पर राजा प्रसेनजित सभी आभूषणों से अलंकृत हो शास्ता के सम्मुख पहुँचे। उसी समय कालुदायी भी तुरंत समाधि से उठे तथा वहीं परिषद् में किनारे विद्यमान थे। वैसे तो उनके नाम में 'काल' शब्द जुड़ा था पर वे थे गौर वर्ण के।

उस समय सूरज डूब रहा था और चन्द्रमा प्रकट हो रहा था। आनन्द ने उदय होते चन्द्रमा को देखा, अस्त होते सूर्य को देखा, राजा के शरीर की प्रभा देखी, कालुदायी और शाक्य मुनि के शरीर की आभा भी देखी। उन्हें इन सभी शोभाओं में बुद्ध की शोभा श्रेष्ठ लग रही थी।

आनन्द स्थविर बुद्ध के सम्मुख उपस्थित हुए, उन्हें सादर प्रणाम किया और कहा, "भन्ते ! मैंने इन सभी शोभाओं की तुलना की है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आपकी शोभा ही सर्वश्रेष्ठ है। इसका क्या कारण है ?"

तथागत ने समझाया, "आनन्द ! सूर्य दिन में ही प्रकाश देता है और चन्द्रमा रात में ही शोभा बढाता है। राजा आभूषणों से अलंकृत हो यूद्धभूमि में शोभायमान होता है। क्षीणास्रव भिक्षु समाधिस्थ रहकर शोभा देता है पर बुद्ध तो दिन-रात सभी समय पाँच प्रकार के तेज से प्रकाशित रहते हैं।वे (1) अपने शील तेज से दुश्शीलता को (2) गुणतेज से निर्गुणता को (3) प्रज्ञातेज से दुर्बुद्धि को (4) पुण्य तेज से अपुण्य (पाप) को तथा (5) धर्मतेज से अधर्म को हटाकर इस पंचविध तेज से समस्त लोक में निरंतर शोभायमान रहते हैं।
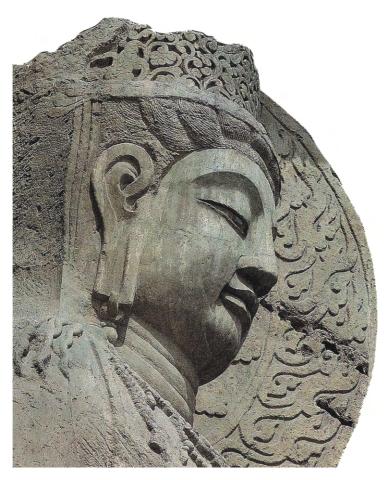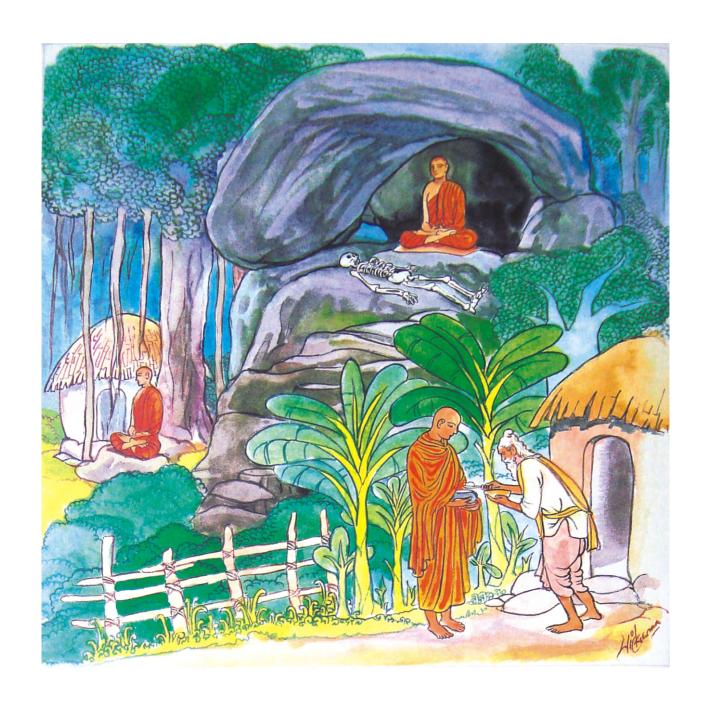
गाथा: बाहितपापोति ब्राह्मणो, समचरिया समणोति वुच्चति।
पब्बाजयमत्तनो मलं, तस्मा "पब्बजितो" ति वुच्चति।। 388।।

अर्थ: जिसने पापों को नष्ट कर दिया है वह 'ब्राह्मण' है। जो समभाव का आचरण करता है वह मेरी दृष्टि में 'श्रमण' कहलाता है तथा जो चित्तविकारों को हटा देता है वह 'प्रव्रजित' कहलाता है।

प्रव्रजित कौन है ?
किसी प्रव्रजित ब्राह्मण की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में वाह्य प्रव्रज्या से प्रव्रजित होकर एक ब्राह्मण अपने आप से पूछने लगा, "शाक्य मुनि अपने शिष्यों को 'प्रव्रजित' कहते हैं। प्रव्रज्या तो मैंने भी ली है तो मुझे भी 'प्रव्रजित' कहा जाना चाहिए।" ऐसा सोचकर वह जेतवन गया और बुद्ध से पूछा कि 'उसे भी प्रव्रजित क्यों नहीं कहा जाए ?' तब तथागत ने उसे स्पष्ट किया, "प्रव्रज्या ले लेने मात्र से मैं किसी को प्रव्रजित नहीं कहता। इसके विपरीत जिसने अपने चित्त से सभी क्लेश-विकारों को निकाल दिया है उसे 'प्रव्रजित' कहता हूँ।" जैसे पापों का नाश करने के कारण 'ब्राह्मण' तथा सभी अकुशलों को अपने आचरण द्वारा शांत करने के कारण 'श्रमण' कहलाता है; वैसे ही जो अपने राग आदि मलों को समाप्त करता हुआ, दूर हटाता हुआ आचरण करता है वही 'प्रव्रजित' कहलाता है।

गाथा: न ब्राह्मणस्स पहरेय्य, नास्स मुञ्चेथ ब्राह्मणो।
धी ब्राह्मणस्स हन्तारं, ततो धी यस्स मुञ्चति।। 389।।

अर्थ: ब्राह्मण (निष्पाप) पर प्रहार नहीं करना चाहिए, और ब्राह्मण को भी उस प्रकार करने वाले पर कोप नहीं करना चाहिए। धिक्कार है ब्राह्मण पर प्रहार करने वाले पर और उससे भी अधिक धिक्कार है उस पर जो इसके लिए कोप करता है।

क्रोध पर विजय : सर्वोत्तम विजय
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सारिपुत्त थेर अपनी सहनशीलता के लिए सर्वदा विख्यात रहे हैं। एक बार श्रावस्ती के नागरिक एक जगह खड़े होकर उनके धैर्य और सहनशीलता की प्रशंसा कर रहे थे। वहीं पर एक अन्य मतावलम्बी ब्राह्मण भी बैठा हुआ था और इन नागरिकों की बातें सुन रहा था। वह क्रोध और ईर्ष्या से जला जा रहा था। अंत में अपने आप को रोक न सका और बोला, "कोई उन्हें क्रोधित करना जानता ही नहीं होगा। मैं क्रोधित कर दिखाऊँगा।" "ठीक है, तो तुम ही उन्हें क्रोधित कर दिखाओ।" "मैं अवश्य ही उन्हें क्रुद्ध कर दिखाऊँगा।"

दोपहर में सारिपुत्त भिक्षाटन के लिए धीरे-धीरे चल रहे थे। वह ब्राह्मण उनके पीछे पहुँच गया और खूब जोर से उनकी पीठ पर दे मारा। सारिपुत्त ने न तो कोई प्रतिक्रिया की, न कुछ कहा और न ही पीछे मुड़कर देखा। वे शांत भाव से उसी प्रकार चलते गए जैसे कुछ हुआ ही न हो। अब ब्राह्मण को लग गया कि उससे भयानक भूल हुई है। अतः वह सारिपुत्त के चरणों पर गिर गया और उनसे माफी माँगने लगा। सारिपुत्त ने उसे माफ कर दिया। उसने सारिपुत्त को अपने घर भोजन के लिए आमंत्रित किया। सारिपुत्त उसके घर गए और भोजन ग्रहण किया।
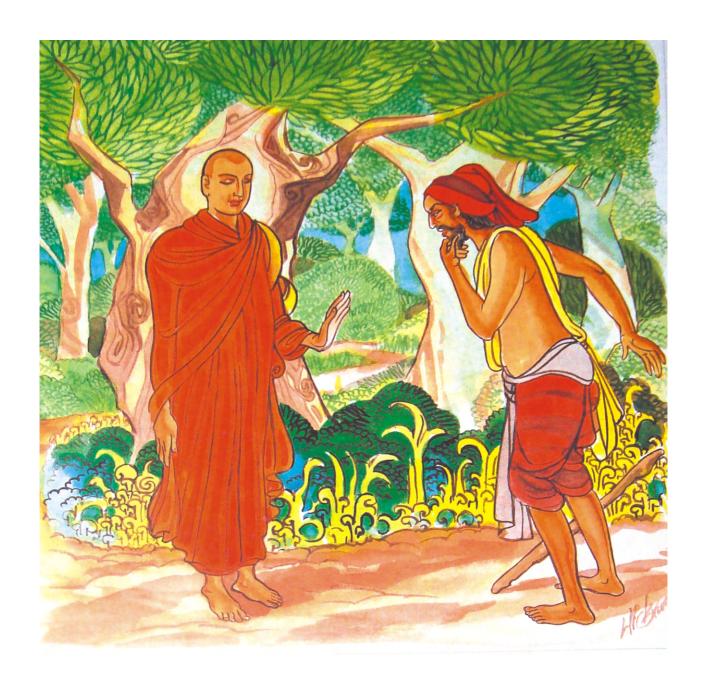
गाथा: न ब्राह्मणस्सेतदकिञ्चि सेय्यो, यदा निसेधो मनसो पियेहि।
यतो यतो हिंसमनो निवत्तति, ततो ततो सम्मतिमेव दुक्खं।। 390।।

अर्थ: ब्राह्मण के लिए यह बात कम कल्याणकारी नहीं कि वह प्रिय वस्तुओं से अपना मन हटा लेता है क्योंकि ऐसा देखा गया है कि जहाँ जहाँ से साधक अपना मन हिंसा से हटा लेता है वहाँ-वहाँ से दु:ख अवश्य शांत होता चलता है।

हिंसा से मन हटायें, दु:ख शांत होता जाएगा
सारिपुत्त थेर की कथा

सारिपुत्त भोजन कर विहार आये। भिक्षुओं में आपस में चर्चा चल पड़ी, "थेर सारिपुत्त को उस ब्राह्मण को माफ नहीं करना चाहिए था और उसके घर जाकर भोजन ग्रहण नहीं करना चाहिए था। आज उसने सारिपुत्त को मारा है, कल वह किसी और को मारेगा।"

संध्या बेला में इन भिक्षुओं ने अपनी प्रतिक्रिया शाक्य मुनि के सम्मुख रखी। इसे सुनकर बुद्ध ने समझाया, "एक सच्चा ब्राह्मण दूसरे सच्चे ब्राह्मण को नहीं मारता है, किसी साधारण जन ने या किसी साधारण ब्राह्मण ने मारा होगा। सारिपुत्त ने वही किया है जो किसी ब्राह्मण को करना चाहिए।"
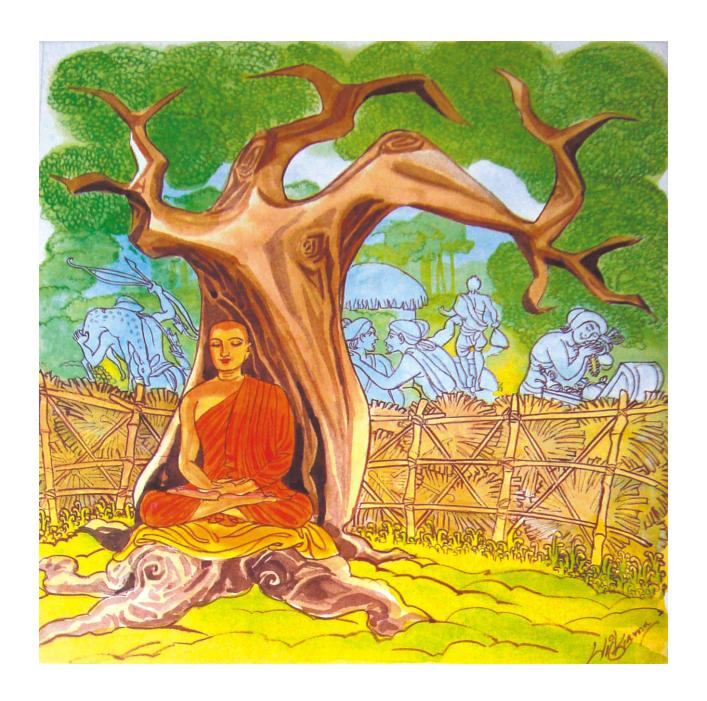
गाथा: यस्स कायेन वाचाय, मनसा नत्थि दुक्कटं।
संवुतं तीहि ठानेहि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 391।।

अर्थ: जिस साधक के काय, वाणी एवं मन से कोई दुष्कृत (पाप) नहीं हो रहा है, वह तीनों स्थल काय, मन और वचन से संयमित है। उसे ही मैं 'ब्राह्मण' मानता हूँ।

सबसे बड़ा संयम : काय, मन और वचन का संयम
महापजापति गोतमी की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

महापजापति गोतमी शाक्य मुनि की सौतेली माँ थीं। बुद्धत्व की प्राप्ति के बाद जब वे कपिलवस्तु में विहार कर रहे थे तब महापजापति गोतमी ने उनसे प्रार्थना की थी कि भिक्खुसंघ में स्त्रियों को भी उपसंपदा मिले पर शास्ता ने उसे स्वीकार नहीं किया था। बाद में महाराज शुद्धोदन के अर्हत्व प्राप्त कर परिनिर्वित हो जाने के बाद वह पाँच सौ महिलाओं के साथ पैदल चलकर वैशाली पहुँचीं। उन्होंने दूसरी बार बुद्ध से भिक्षुसंघ में शामिल करने की प्रार्थना की। इस बार आनन्द थेर ने भी उनके लिए शास्ता के सम्मुख अनुमोदन किया। सभी भिक्षुणियाँ प्रव्रजित हो गईं।

कुछ समय बाद भिक्षुओं ने प्रश्न उठाया कि महापजापति की उपसंपदा सही ढंग से नहीं हुई है। उपाध्याय, आचार्य नहीं हैं । इस कारण भिक्षुणियाँ न उनके साथ उपोसथ रखना चाहती हैं और न प्रवारण। बात बुद्ध तक पहुँची। तब बुद्ध ने स्पष्ट करते हुए बताया, "भिक्षुओं ! ऐसा क्यों कह रहे हो ? मैंने महापजापति को आठ गुरूधर्मों से प्रव्रजित किया है। वह उनको जानती हैं और उनका अभ्यास भी करती हैं। मैं ही उनका आचार्य हूँ, मैं ही उनका उपाध्याय भी हूँ।"
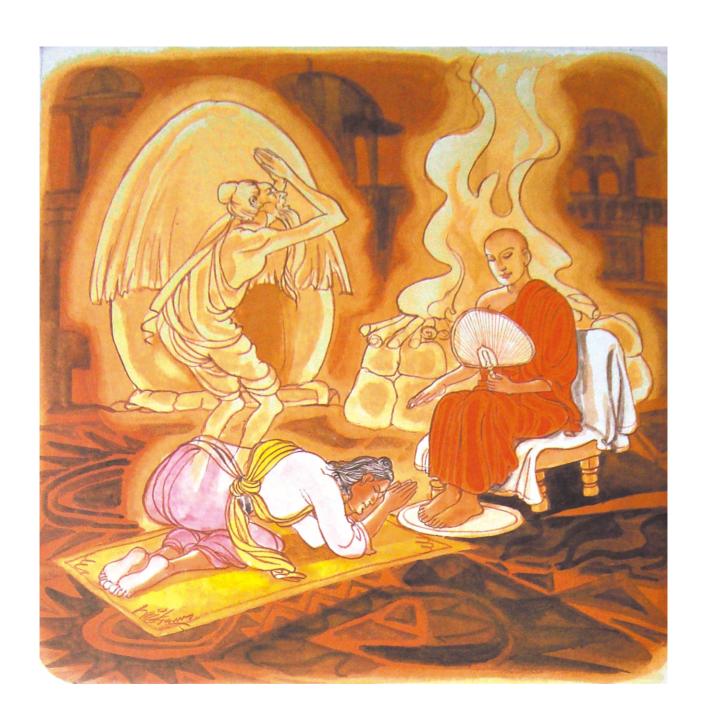
गाथा: यम्हा धम्मं विजानेय्य, सम्मासम्बुद्धदेसितं।
सक्कच्चं तं नमस्सेय्य, अग्गिहुत्तंव ब्राह्मणो।। 392।।

अर्थ: जिस आचार्य के माध्यम से सम्यक सम्बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को जाने, उसे उसी प्रकार सत्कार पूर्वक नमस्कार करे जैसा ब्राह्मण अग्नि आहूति को करता है।

सम्यक सम्बुद्ध को दिखाने वाले आचार्य को नमस्कार है
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

सारिपुत्त थेर ने अश्वजित स्थविर से 'ये धम्मा हेतुप्पभवा' धर्मदेशना सुनकर स्रोतापत्ति फल प्राप्त किया था। वे इस बात को नहीं भूले। स्थविर अश्वजित के प्रति जीवन पर्यन्त उन्होंने कृतज्ञता का भाव रखा क्योंकि वे हृदय से महसूस करते थे कि भन्ते अश्वजित के कारण ही उन्हें मृत्यु के पार देखने का अवसर मिला तथा स्थविर अश्वजित ने ही उन्हें बुद्ध के दर्शन कराये। उनके प्रति कृतज्ञता का भाव रखते हुए प्रत्येक रात्रि सोने से पूर्व वे अपने आचार्य को प्रणाम करते थे और हाथ जोड़कर उधर ही सिर रखकर सोते थे जिस ओर आचार्य होते थे।

जेतवन विहार में अन्य भिक्षुओं ने इसे देखा तो इसका गलत अर्थ लगाया। वे शाक्य मुनि के पास गए तथा बोले, "भन्ते ! लगता है सारिपुत्त आज भी मिथ्या दृष्टि सम्पन्न हैं क्योंकि वे दिशा नमस्कार करते हैं। शास्ता ने सारिपुत्त को बुलाया और पूछा, "सारिपुत्त ! क्या यह सही है कि तुम अब भी दिशा नमस्कार करते हो।" सारिपुत्त ने उत्तर दिया, "तथागत ! आप तो मेरे मन की सारी बातें जानते हैं। आप यह भी जानते हैं कि मैं दिशा नमस्कार नहीं करता हूँ। मैं तो सिर्फ आचार्य जिधर रहते हैं उनका ध्यान कर उधर ही नमस्कार करता हूँ।" तब शाक्य मुनि ने भिक्षुओं को बुलाया और कहा, "भिक्षुओं ! सारिपुत्त दिशा नमस्कार नहीं करते हैं, वरन् अपने आचार्य को नमस्कार करते हैं।"
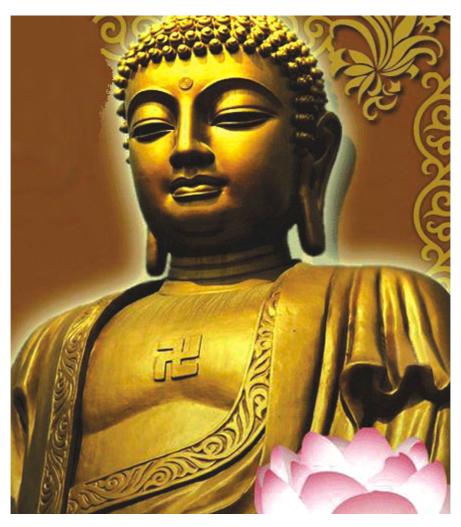
गाथा: न जटाहि न गोत्तेन, न जच्चा होति ब्राह्मणो।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च, सो सुची सो च ब्राह्मणो।। 393।।

अर्थ: न जटा बढ़ा लेने से, न गोत्र से, न जन्म से ही ब्राह्मण होता है। जिसमें सत्य (सोलह प्रकार से प्रतिवेधन किए हुए चार आर्य सत्य) और नौ प्रकार के लोकोत्तर धर्म हैं, वही शुचि (पवित्र) है और वही ब्राह्मण है।

जो शुचि (पवित्र) है वही ब्राह्मण है
जटाधारी ब्राह्मण की कथा
स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन में एक जटाधारी ब्राह्मण ने विचार किया, "मैं तो मातृपक्ष तथा पितृपक्ष दोनों से ही परिशुद्ध ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। बुद्ध अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहकर पुकारते हैं। मैं तो जाति से ही ब्राह्मण हूँ। अतः उन्हें मुझे भी 'ब्राह्मण' कहकर ही संबोधित करना चाहिए।" यह बात सोचकर वह बुद्ध के समक्ष प्रस्तुत हुआ तथा उनके सामने अपनी शंका रखी। तब शाक्य मुनि ने उसे समझाया, "केवल जटा बढ़ा लेने से या जाति विशेष में पैदा होने मात्र से कोई ब्राह्मण नहीं हो जाता है। ब्राह्मण वह है जिसने सत्य के दर्शन कर लिए हों।"
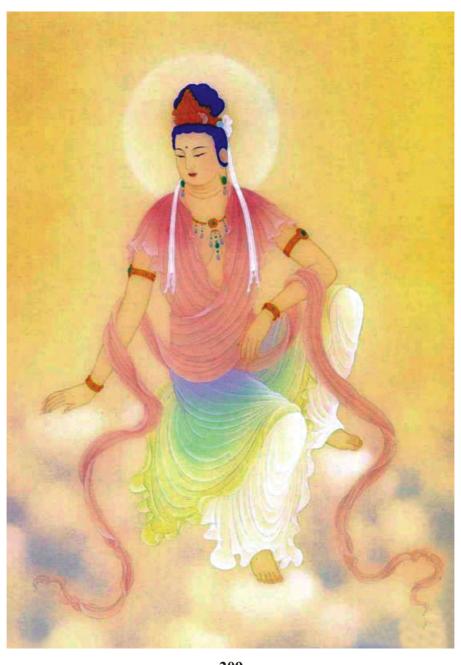
गाथा: किं ते जटाहि दुम्मेध, किं ते अजिनसाटिया।
अब्भन्तरं ते गहनं, बाहिरं परिमज्जसि।। 394।।

अर्थ: हे दुर्बुद्धि दुष्ट ! जटाओं से तेरा क्या होगा ? मृगचर्म धारण करने से तुझे क्या लाभ होगा ? भीतर से तो तेरा चित्त गहन मलीन है। बाहर-बाहर तू इसे क्या रगड़ता-धोता है ?

मलीन मन को साफ करें, बाहर धोने से क्या लाभ ?
पाखंडी ब्राह्मण की कथा

स्थान : कूटागारशाला, वैशाली

एक दिन वैशाली में एक पाखंडी ब्राह्मण अर्जुन के पेड़ में पैर ऊपर तथा सिर नीचे कर लटक गया और आने-जाने वालों से कहने लगा, "मुझे गायें दो, कार्षापण दो, मुझे सेवक दो। नहीं दोगे तो यहीं से नीचे गिरकर आत्महत्या कर लूँगा और प्रेत बनकर तुम्हारे नगर को तबाह कर दूँगा।" नगरवासी डर गए और उसने जिन-जिन चीजों की माँग की थी उन सभी की आपूर्ति कर दी । वह नीचे उतरा, सभी चीजें उठाईं और चल दिया। भिक्षुओं ने यह सब देखा। अतः ब्राह्मण से पूछा, "जो जो चाहा था वह सब मिल गया न ? " ब्राह्मण ने सांड़ की तरह गरजते हुए कहा, "हाँ मिल गया।"

भिक्षुओं ने सारी बातें शास्ता को बताई। उन्होंने इसका स्पष्टीकरण किया, "यह भूतकाल में भी लोगों को ठगना चाहता था पर लोगों के बुद्धिमान होने के कारण उनको ठग नहीं पाया था। पर इस जन्म में इस पाखंडी ने मूर्खों को ठग दिया है।"

उन्होंने गोधजातक की कथा सुनाई, "अतीत काल में काशिक गाँव में एक पाखंडी ब्राह्मण रहता था। उसके एक भक्त परिवार ने एक दिन उसे गोधा (सर्पजाति) का माँस खिलाया। वह उसे बहुत अच्छा लगा। अतः उसने अपने पर्णकुटी में सभी तरह के मसाले मंगा लिए और पास ही बिल में रहने वाले साँप को मारने के लिए निद्रालु होने का नाटक करने लगा। साँप प्रतिदिन ब्राह्मण को प्रणाम करने आता था। आज उसके सोने के अभिनय को देखकर सोचा, 'आज आचार्य का विश्राम करने का ढंग अजीब लग रहा है।' अतः वह दूर से ही बिल में घुसने के लिए मुड़ गया। तपस्वी ने उसे मारने के लिए डंडा फेंका पर वह डंडा चूक गया। वह साँप बिल में घुस गया। उस जन्म में यह ब्राह्मण ही वह पाखंडी ब्राह्मण था और मैं गोधराज था।"
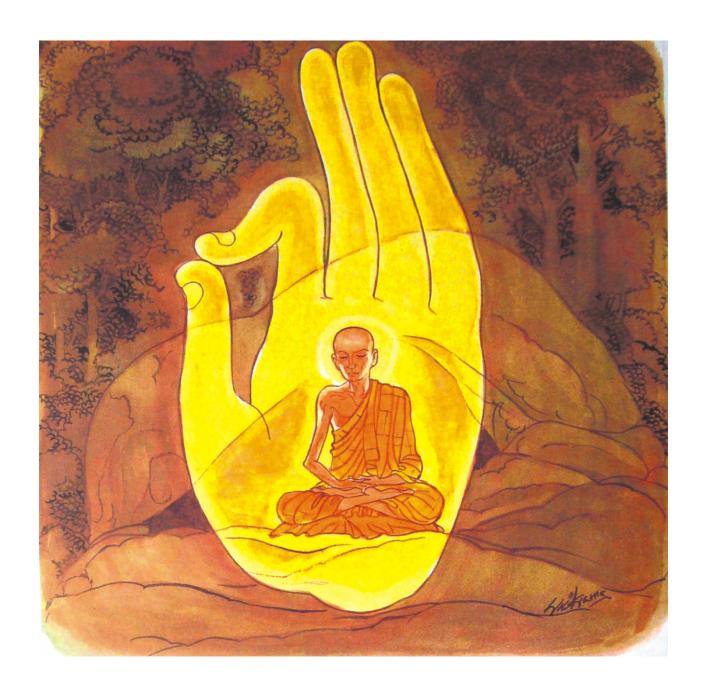
गाथा: पंसुकूलधरं जन्तुं, किसं धमनिसन्थतं।
एकं वनस्मिं झयन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 395।।

अर्थ: जो फटे- पुराने वस्त्रों को धारण करता है, जो दुबला-पतला (कृश है), जिसके शरीर की सभी नसें दूर से दिखाई देती हैं, जो वन में अकेला ध्यानरत रहता है, उसे मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

ब्राह्मण हो तो किसा गोतमी जैसा
किसा गोतमी की कथा

स्थान : गृद्धकूट पर्वत, राजगीर

एक रात, प्रथम प्रहर में, देवराज इन्द्र शाक्य मुनि के पास धर्मपरिषद में बैठा हुआ धर्म श्रमण कर रहा था। शास्ता उन दिनों गृद्धकूट पर्वत पर साधना किया करते थे। जिस समय यह धर्म प्रवचन चल रहा था उसी समय किसा गोतमी आकाशमार्ग से शास्ता की वन्दना के लिए आई। पर जब उसने शक्र को उनके पास बैठा हुआ देखा तो दूर से ही सादर प्रणाम कर लौट गई। शक्र ने उसे देखकर पूछा कि यह नारी कौन थी। तब तथागत ने किसा गोतमी के विषय में बताया, "यह किसा गोतमी नाम की मेरी बेटी है। एक बार मैंने इसे दुःख के सागर से बाहर निकाला था। तब वह प्रव्रजित हो गई। उस समय उसने स्रोतापन्न प्राप्त किया था। वह मेरे संघ में पांशुकुल (फटे चीथड़ों से बना चीवर) धारण करने वाली थेरियों में अग्र है।"
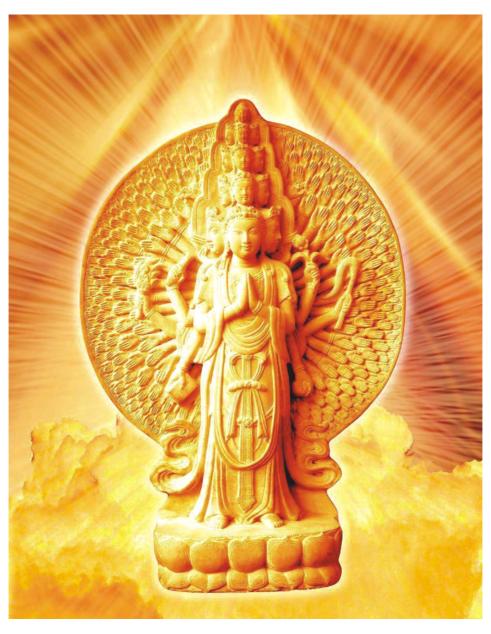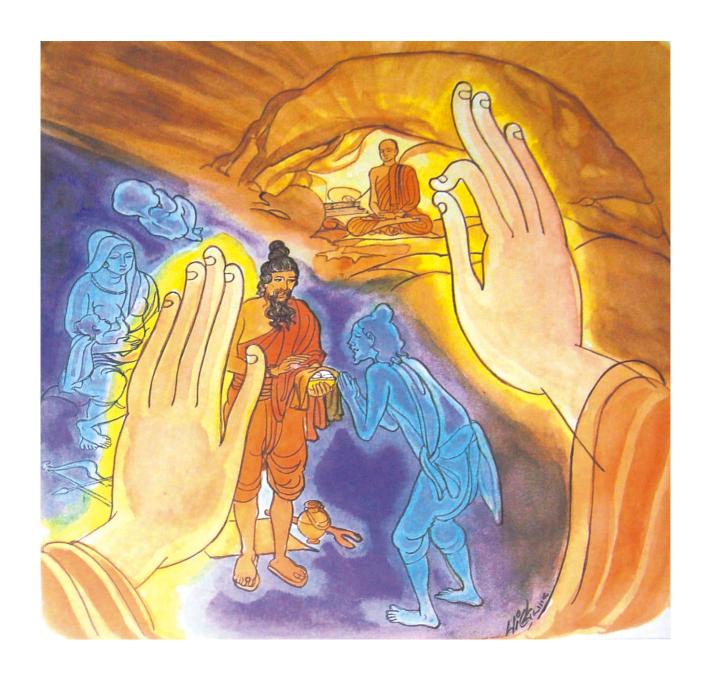
गाथा: न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसम्भवं।
भोवादि नाम सो होति, सचे होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 396।।

अर्थ: केवल ब्राह्मण माता की योनि से जन्म लेने वाले को मैं ब्राह्मण नहीं कहता। वह तो केवल भो वादी (अहंकारी) है। वह तो संग्रह (ग्रहण) करने वाला है। हाँ जो अपरिग्रह (अनासक्ति युक्त) और त्यागी (दूसरों से कुछ लेने की इच्छा न रखने वाला) है उसे मैं 'ब्राह्मण' मानता हूँ।

अपरिग्रही और त्यागी ही ब्राह्मण है
एक ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती का एक ब्राह्मण एक दिन शाक्य मुनि के सम्मुख प्रकट हुआ और उनसे जिज्ञासा जाहिर की, "भो गौतम ! आप अपने शिष्यों को 'ब्राह्मण' कहते हैं। मेरा जन्म ब्राह्मण योनि में हुआ है। अत: मुझे भी ब्राह्मण कहना चाहिए। क्या मैं ब्राह्मण नहीं हूँ ? "

तब शास्ता ने इस गाथा के माध्यम से समझाया कि ब्राह्मण कौन है।

गाथा: सब्बसंयोजनं छेत्वा, यो वे न परितस्सति।
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 397।।

अर्थः जो सारे सांसारिक बंधनों (संयोजनों) को काटकर तृष्णा से भयभीत (त्रस्त) नहीं होता, जो विषयों के संग और आसक्ति से विमुक्त हो चुका है, जिसकी संसार में आसक्ति नहीं है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

विषयों के संग और आसक्ति से विमुक्त ही ब्राह्मण है
उग्रसेन की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में उग्रसेन ने एक नटी कन्या से विवाह कर लिया था। बाद में पत्नी के उलाहना देने पर उसने भी नट के कारनामे सीख लिए और नट कला का प्रदर्शन करने लगा। वह बहुत ऊँचाई तक जाता था, नीचे कूदता था आदि, आदि। इस कथा का जिक्र गाथा 348 (तन्हा वर्ग) में आया है।

एक दिन उसने शाक्य मुनि के सम्मुख अपना खेल दिखाया और उसी समय अर्हत्व प्राप्त कर गया। वह बाँस से नीचे उतरा, शास्ता के पास गया तथा प्रव्रजित होने की आज्ञा माँगी। शास्ता ने उसे भिक्षु बना लिया।

एक दिन भिक्षुगण उससे पूछने लगे कि उतने ऊँचे-ऊँचे बाँसों पर चढ़कर खेल दिखाते समय उसको डर नहीं लगता था। उसने कहा, "नहीं।" भिक्षुगण बुद्ध के पास गए और उसने कहा, "भन्ते ! उग्रसेन झ ूठ बोलता है कि उसे भय नहीं लगता था और उसने अर्हत्व पा लिया था।" तब शास्ता ने बताया, "नहीं भिक्षुओं ! उग्रसेन झूठ नहीं बोल रहा है। मेरे पुत्र उग्रसेन जैसे व्यक्ति, जो बन्धनों को काट चुके हैं, डरते नहीं हैं।"
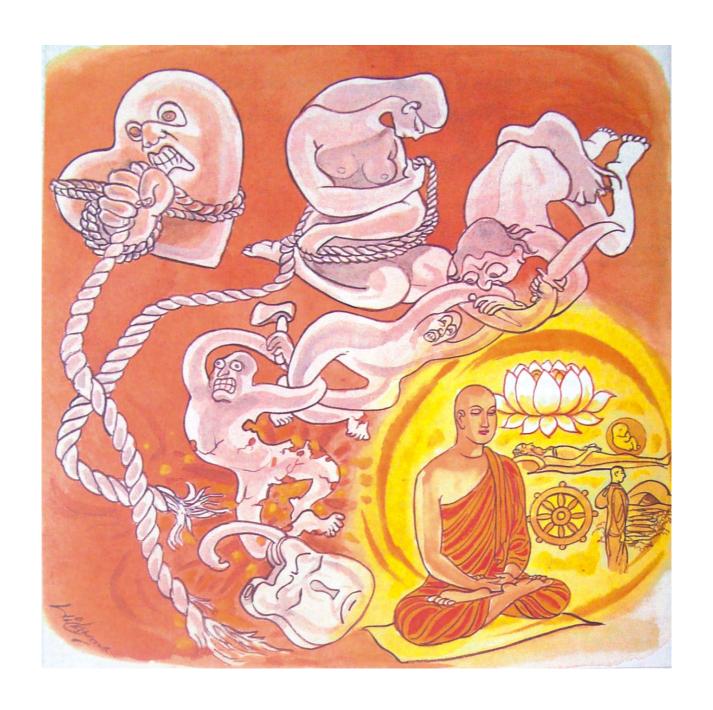
गाथा: छेत्वा नद्धिं वरत्तञ्च, सन्दानं सहनुक्कमं।
उक्खित्तपलिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 398।।

अर्थ: नद्धा (क्रोध), वरत्रा (तृष्णा रूपी रस्सी), संदान (बासठ प्रकार की दृष्टियाँ रूपी पगहे), और हनुक्रम (मुँह पर बाँधे जाने वाला जाल, अनुशय) को काट कर, पटिघ (अविद्या रूपी जूए) को उतार फेंक जो बुद्ध हुआ, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

आसक्तियों, अविद्या को फेंकने वाला ही ब्राह्मण है
दो ब्राह्मणों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में दो ब्राह्मण रहते थे। एक के पास चूड़ारोहित नामक बैल था और दूसरे के बैल का नाम था - महारोहित। दोनों में अक्सर विवाद होता रहता था कि एक का बैल दूसरे की तुलना में अधिक बलवान है। फिर उन्होंने एक दिन विचार-विमर्श किया, "विवाद में उलझने से क्या लाभ ? एक दिन दोनों बैलों की परीक्षा ले लेते हैं।"

तय हुआ कि दोनों अचिरावती नदी के तट पर जायेंगे और बैलगाड़ी में बालू भरकर इन बैलों की जोड़ी से निकलवायेंगे। इससे पता चल जाएगा कि कौन बैल अधिक बलवान है।

दूसरे दिन यही हुआ। नदी तट पर बैलगाड़ी में बालू लाद दिया गया और बैलों की जोड़ी खींचने लगी। पर बैलगाड़ी टस से मस नहीं हुई। बैल उसे हिला भी न सके। यहाँ तक की उनकी रस्सी और चमड़े की पट्टी भी टूट गई।

भिक्षुगण ने इसे देखा और विहार आकर शास्ता को बताया। शास्ता ने कहा, "ये लौकिक रस्सियाँ हैं। इन्हें कोई भी तोड़ देगा। भिक्षु को तो अपनी-अपनी क्रोध और तृष्णा रूपी रस्सी को काटने का प्रयास करना चाहिए।

गाथा: अक्कोसं बधबन्धञ्च, अदुट्ठो यो तितिक्खति।
खन्तीबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 399।।

अर्थ: जो मनुष्य अपना चित्त दूषित किये बिना दुर्जनों के अपशब्द (गाली), मारपीट, वध (दंड) या किसी प्रकार का बंधन (कारागार) - सब कुछ सह लेता है, सहन शक्ति (क्षमा-बल) ही जिसकी सेना और सेनापति है, उसको मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

जो क्षमा बल युक्त है वह ब्राह्मण है
आक्रोश भारद्वाज की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

आक्रोश भारद्वाज के भाई की पत्नी स्रोतापन्न थी। वह किसी भी बहाने खखारने, खाँसने, फिसलने आदि के बाद "नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स" मंत्र का उच्चारण करती थी। (अर्थः उन भगवान अर्हत् सम्यकसम्बुद्ध को प्रणाम है)

एक दिन उसके घर ब्राह्मण भोज था। भोजन कराते समय वह लड़खड़ा गई और उसके मुँह से यही मंत्र निकल पड़ा। ब्राह्मण ने क्रोध करते हुए कहा, "नीच जाति की स्त्री जहाँ भी होती है उस श्रमण सिरमुंडे की ही प्रशंसा किया करती है।" फिर बोला, "शूद्र महिला ! अभी जाऊँगा और तुम्हारे श्रमण से शास्त्रार्थ करूँगा और तब देखूँगा कि वह कितना ज्ञानी है।

ब्राह्मण शाक्य मुनि के पास गया, बिना प्रणाम किये ही एक तरफ खड़ा होकर पूछा, "भो गौतम ! क्या काटकर मनुष्य सुख की नींद सो पाता है तथा क्या काट देने के बाद उसे शोक नहीं करना पड़ता है ? किस एक धर्म का नाश करना सर्वोत्तम है ? "

ब्राह्मण को इस गाथा के माध्यम से शास्ता ने समझाया, "ब्राह्मण ! मनुष्य क्रोध को काटकर सुखपूर्वक सो सकता है। क्रोध के त्याग से उसे शोक नहीं करना पड़ता है क्योंकि आरंभ में क्रोध बहुत मधुर लगता है पर उसका परिणाम विष के समान होता है। अतः आर्य (विद्वान लोग) उसे नष्ट कर देते हैं ताकि शोक को प्राप्त न हों।"

ऐसा सुन वह शास्ता का भक्त बन गया, प्रव्रज्या ग्रहण कर लिया और अर्हत हो गया।

उसका छोटा भाई आक्रोश भारद्वाज यह सुनकर बहुत ही क्रुद्ध हुआ और वह भी शास्ता से शास्त्रार्थ हेतु गया। पर वह भी बुद्ध के प्रति श्रद्धालु होकर, प्रव्रज्या ग्रहण कर अर्हत हो गया।

उसके बाद दो छोटे भाई - सुन्दरिक भारद्वाज और विलिडग्गक भारद्वाज भी क्रुद्ध होकर शाक्य मुनि के पास आये पर वे भी प्रव्रजित होकर अर्हत हो गए।

एक दिन भिक्षुगण शास्ता के अद्भुत गुणों की चर्चा कर रहे थे। यह सुनकर शास्ता ने बताया, "भिक्षुओं ! अन्दर में अत्यधिक शांतिबल से युक्त होने के कारण मैं दुर्जनों पर द्वेष नहीं करता। इससे आर्यजनों की प्रतिष्ठा ही बढ़ती है।"
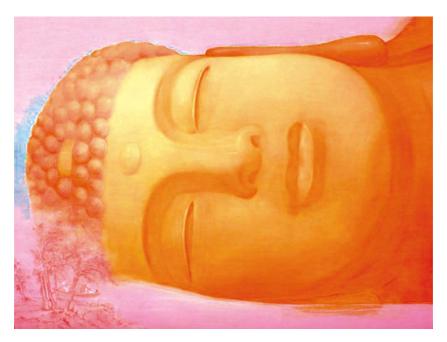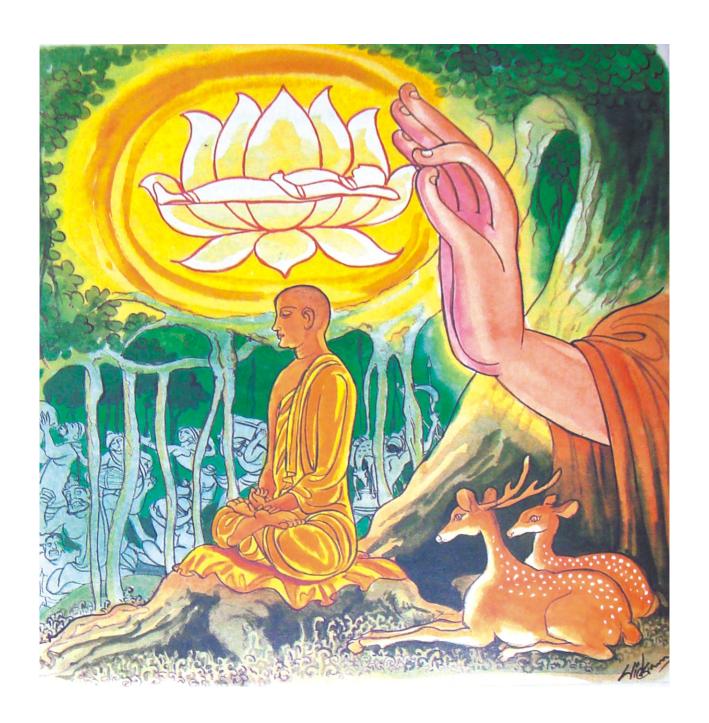
गाथा: अक्कोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 400।।

अर्थ: जो किसी पर क्रोध नहीं करता, धार्मिक शील (सदाचार) एवं व्रत से सम्पन्न है, निराभिमानी (दंभी नहीं) है, सदा तृष्णा रहित रहता है, छह इन्द्रियों का दमन कर लेने से दान्त (संयमी) और अंतिम शरीर धारी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

क्रोध, शील, व्रत से संपन्न, अभिमान रहित संयमी ही ब्राह्मण है
सारिपुत्त थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

शाक्य मुनि के वेणुवन में विहरते समय एक दिन सारिपुत्त भिक्षुओं के साथ नालक गाँव पहुँचे और भिक्षुसंघ के साथ माँ के घर के दरवाजे पर भोजन दान के लिए खड़े हो गए। थेर की माँ ने सबों को अन्दर बुलाकर भोजन कराया पर भोजन परोसते समय सारिपुत्त को भला-बुरा कहे जा रही थीं, "जूठा खाने के लिए अस्सी करोड़ का धन छोड़कर प्रव्रजित हुआ है" आदि,आदि। सारिपुत्त ने बहुत ही शालीनता से उसे सुन लिया और कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

सभी भिक्षु बौद्ध विहार लौट आये। शास्ता ने राहुल से पूछा, "कहाँ गये थे ? " "भन्ते ! दादी के गाँव गये थे।" "तुम्हारी दादी ने तुम्हारे उपाध्याय को कुछ कहा ? " "कुछ कहा ?, बहुत कुछ कहा। दादी उपाध्याय पर बहुत नाराज थीं।" "क्या कहा ? " "यह कहा।" "तुम्हारे उपाध्याय ने उत्तर में क्या कहा ? " "भन्ते ! उन्होंने कुछ नहीं कहा और वे शांत रहे।"
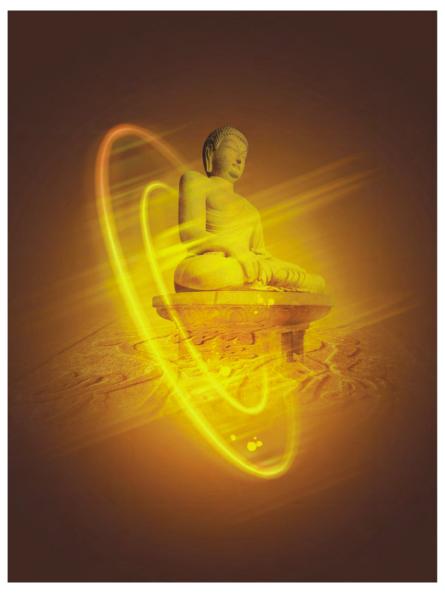
गाथा: वारि पोक्खरपत्तेव, आरग्गेरिव सासपो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 401।।

अर्थ: कमल के पत्ते पर पानी की बूँद और सूई के सिरे पर सरसों के दाने के समान जो कामभोगों में लिप्त नहीं होता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

कामभोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है
उत्पलवर्णा थेरी की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

थेरी उत्पलवर्णा के साथ नन्द ने बलात्कार किया था जिसके कारण धरती फटी और वह उसमें समा गया। इसका वृतांत गाथा 69 में दिया गया है।

बाद में एक दिन धर्मसभा में चर्चा का विषय था- "क्या क्षीणास्त्रव भिक्षु भी काम सुखों का सेवन करते हैं ? " भिक्षुओं में इस विषय पर मतभेद था। एक समूह कह रहा था - " सेवन क्यों नहीं करते ? क्या वे सूखे, ठूँठ वृक्षों की तरह निर्जीव हैं ? क्या उनकी इन्द्रियाँ साँप या चूहों के बिल हैं ? वे भी तो हमारी तरह रक्त-मज्जा के ही बने हुए हैं। अत: वे कामसुखों का सेवन करते हैं।" दूसरा समूह इसके ठीक विपरीत विचार धारा वाला था। जब यह वार्त्तालाप हो रहा था, उसी समय शाक्य-मुनि वहाँ पधारे। शिष्यों से चर्चा का विषय जानकर उन्होंने समझाया, "नहीं भिक्षुओं ! क्षीणास्त्रव भिक्षु इन कामसुखों का सेवन नहीं करते, वे इन्हें स्वीकार नहीं करते। वे इनमें किसी प्रकार के आनन्द की अनुभूति नहीं करते।"

विषय वस्तु को स्पष्ट करने के उद्देश्य से उन्होंने यह गाथा सुनाई।
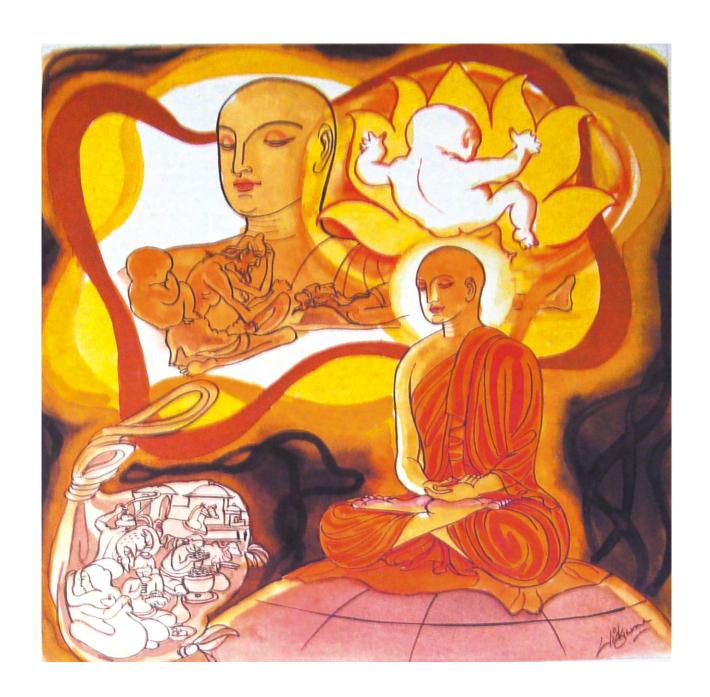
गाथा: यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
पन्नभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 402।।

अर्थ: जो यहीं, इसी लोक में, अपने दुःख के क्षय को प्रज्ञापूर्वक जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार फेंका है और जो आसक्ति रहित है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

बोझ उतार फेंकने वाला आसक्ति रहित ही ब्राह्मण है
किसी ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

जेतवन में एक ब्राह्मण रहता था। उसका नौकर उसकी आज्ञापालन में अपने को असमर्थ पा रहा था। अतः उसे छोड़कर भाग गया और बौद्ध विहार जाकर प्रव्रजित हो गया। वहाँ साधना में तल्लीन होकर उसने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। ब्राह्मण नौकर को खोजता रहा पर बहुत दिनों तक वह उसे नहीं दिखा।

एक दिन वह भिक्षु (पूर्व काल में दास) शाक्य-मुनि के साथ भिक्षाटन कर रहा था। ब्राह्मण ने उसे भिक्षा माँगते हुए देख लिया। उसे देख कर उसने उस भिक्षु के चीवर का एक किनारा पकड़ लिया। तथागत ने मुड़कर देखा और लौटकर ब्राह्मण से पूछा, "यह क्या कर रहे हो ? " "भो गौतम ! यह मेरा दास है।" "इसने तो अपना सारा लौकिक भार उतार फेंका है।" ब्राह्मण को बात समझ में आ गई कि उसका पुराना नौकर अर्हत् हो चुका है। "क्या यही बात है ? " "हाँ ब्राह्मण ! यही बात है।"
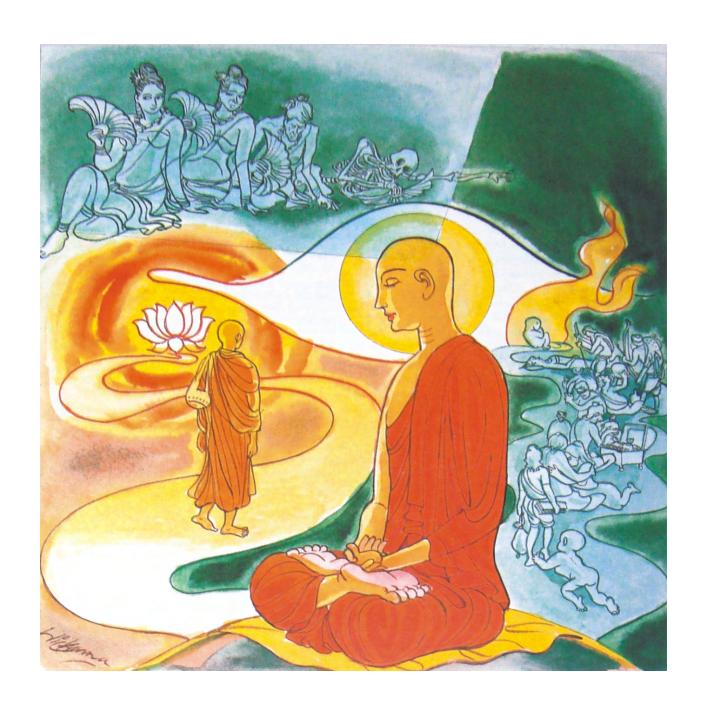
गाथा: गम्भीरपञ्ञं मेधाविं, मग्गामग्गस्स कोविदं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 403।।

अर्थ: जो गम्भीर प्रज्ञा वाला है, मेधावी है, मार्ग-अमार्ग को अच्छी तरह पहचानता है तथा जिसने उत्तम अर्थ (निर्वाण) को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं 'ब्राह्मण' कहता हूँ।

मार्ग- अमार्ग का जानकार प्रज्ञावान हो निर्वाण प्राप्त करेगा
खेमा भिक्षुणी की कथा

स्थान : गृद्धकूट , राजगृह

एक रात गृद्धकूट पर साधना करते समय शक्र अपने पूरे देवता समूह के साथ शाक्य मुनि की सेवा में प्रस्तुत हुआ। वह उनसे साराणीय (मन में बैठाने योग्य, स्मरण करने योग्य) धर्म कथा सुन रहा था। उसी समय खेमा भिक्षुणी "शास्ता के दर्शन करूँगी" यह सोचकर आकाश मार्ग से आई पर वहाँ शास्ता को शक्र एवं देव परिषद के साथ बैठा देख, आकाश से ही सादर प्रणाम कर पुनः आकाश मार्ग से चली गई। उसके जाने पर शक्र ने तथागत से पूछा, "भन्ते ! यह भिक्षुणी कौन थी जो आकाश मार्ग से आपसे मिलने आई और आकाश में ही रुककर, आपको सादर प्रणाम कर वापस चली गई ? "

बुद्ध ने इन्द्र को बताया, "महाराज ! यह महाप्राज्ञ शिष्या खेमा थी जो मेरे लिए पुत्रीतुल्य है। वह मार्ग-अमार्ग का सूक्ष्म भेद जानती है। भिक्षुणियों में उसके समान प्रज्ञावान और कोई नहीं है।"
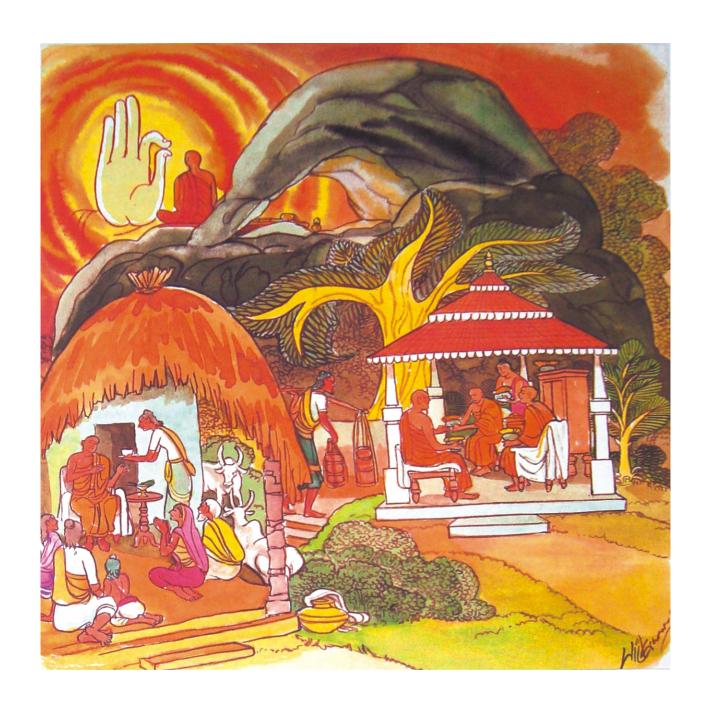
गाथा: असंसट्ठं गहट्ठेहि, अनागारेहि चूभयं।
अनोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।404।।

अर्थ: जो गृहस्थ तथा गृह त्यागियों दोनों में लिप्त नहीं होता, जो बिना ठौर-ठिकाने के घूमने वाला है, अल्प इच्छा वाला, संतोषवृत्ति में लिप्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण की योग्यता
कन्दरावासी तिस्स थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

तिस्स स्थविर कर्मस्थान प्राप्त कर, जंगल में एक एकान्त स्थान पर जाकर, एक गुफा में ध्यान साधना करने लगा। उसका चित्त एकाग्र होने लगा। तब उस गुफा में विद्यमान देवता ने सोचा, "यह शीलवान भिक्षु यहाँ आ गया है, अब मेरा यहाँ रहना कठिन है। पर शीलवान होने के कारण मैं इसे जाने के लिए कह भी नहीं सकता।" अत: भिक्षु को हटाने के लिए उसने एक योजना बनाई।

ऐसा सोचकर वह देवता एक दिन किसी उपासिका के ज्येष्ठ पुत्र के शरीर में प्रवेश कर गया। उसके मुँह से झाग निकलने लगा, आँखें बाहर निकल आईं और गर्दन टेढ़ी हो गई। उपासिका ने पुत्र को देखा तो चिल्लाई, "देखो भाई देखो ! पता नहीं मेरे पुत्र को क्या हो गया है ? " देवता ने कहा, "मैंने इसे कब्जे में कर लिया है" "क्या उपचार है ? " "स्थविर के पैर धोए जल को इसके सर पर डालो।" स्थविर उस समय घर में भोजन कर रहा था। भोजनोपरान्त उपासिका ने उसके चरण धोए और उससे अनुमति लेकर उस जल को पुत्र के सिर पर डाल दिया। उसका पुत्र ठीक हो गया। भिक्षाटन कर तिस्स थेर अपने साधनास्थल आ पहुँचा। देवता ने उसे दरवाजे से ही अन्दर जाने से मना किया। भिक्षु ने पूछा, "मैंने शील पालन में कब उपेक्षा की ? " "आज तुमने वैद्यकर्म किया।" "वह कैसे ? " "आज ही तो तुम्हारे पैर के धोये जल से उपासिका का पुत्र ठीक हुआ है।" यह सुनकर स्थविर को अपने शील के प्रति बड़ी ही बलवती प्रीति उत्पन्न हुई और वह अर्हत बन गया।

अब थेर ने देवता को गुफा छोड़ने का आदेश दिया। वह गुफा छोड़कर चला गया। थेर ने वहाँ वर्षावास बिताया और बाद में जेतवन चला गया।

भिक्षुओं को इस बात की जानकारी हुई तो उन्होंने तिस्स से पूछा, "इतना होने पर भी तुम्हें देवता के प्रति क्रोध नहीं आया ? " "नहीं।" भिक्षुगण शास्ता के पास गये और उनसे कहा, "यह भिक्षु अपनी उपलब्धि का गलत, दम्भपूर्ण बखान कर रहा है।"

शास्ता ने उन्हें स्पष्ट किया, "थेर तिस्स झूठ नहीं बोल रहा है। अर्हत् क्रुद्ध नहीं हुआ करते।"
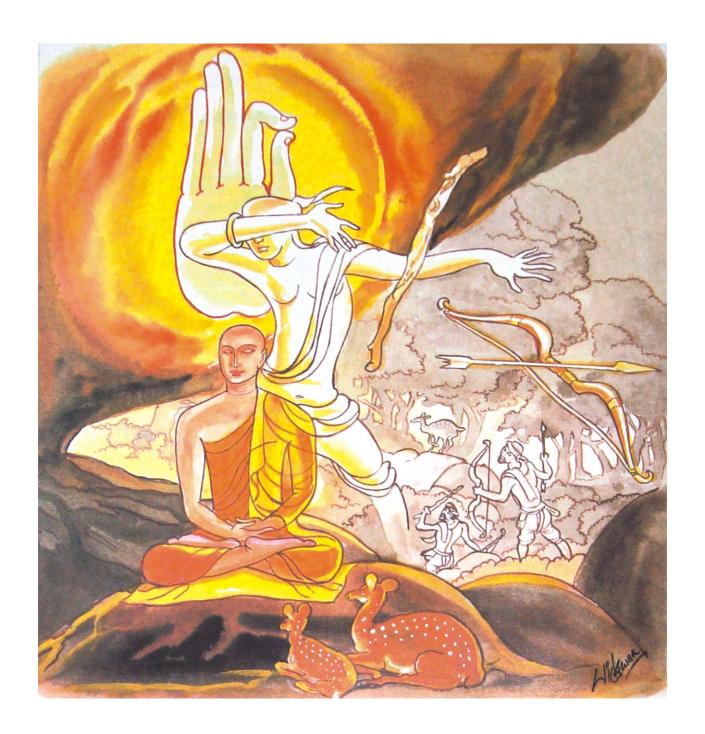
गाथा: निधाय दण्डं भूतेसु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घातेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 405।।

अर्थ: स्थावर व जंगम (चर और अचर) सभी प्राणियों के प्रति जिसने दंड (हिंसा) त्याग दिया है, जो न किसी की हत्या करता है और न हत्या करवाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अहिंसक ही ब्राह्मण होता है
किसी भिक्षु की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन के पास एक कर्मस्थान में साधना कर एक भिक्षु ने अर्हत्व प्राप्त कर लिया। वह अपने साधना स्थल से यह सोचकर निकला कि शाक्य मुनि को अपनी उपलब्धि बताऊँगा।

जब वह रास्ते से जा रहा था तो एक स्त्री, जो अपने पति से लड़कर घर से "पिता के घर चली जाऊँगी" यह सोचकर निकली थी, उसके पीछे हो ली। स्थविर ने उसे नहीं देखा। वह चलता गया, पीछे-पीछे वह चलती गई।

उधर पति भी उसकी तलाश में निकल गया। उसने स्त्री को स्थविर के पीछे-पीछे चलते हुए देखा तो सोचा कि इस स्थविर ने ही उसे बहका दिया है। अत: वह उस स्थविर के पीछे पहुँच गया और उसे बहुत जोर से मार दिया। मारने से उसके शरीर पर कई जगह घाव हो गए, खून बहने लगा। स्थविर ने उस पर क्रोध नहीं दिखाया। वह सीधा विहार गया और उसने अपना तत्काल उपचार करवा लिया। सभी भिक्षुओं को यह कथा सुनाई।

कथा सुनने के बाद भिक्षुओं ने प्रश्न किया, "इतना कुछ होने के बाद भी आपको क्रोध नहीं आया ? " "नहीं।" तब भिक्षुगण शाक्य मुनि के पास गए और कहा, "यह भिक्षु झूठ बोल रहा है, मिथ्याचार कर दंभ भर रहा है।"

शास्ता ने उन्हें समझाया, "यह भिक्षु झूठ नहीं बोल रहा है। इस अवस्था में पहुँच कर कोई क्रोध नहीं करता।"

गाथा: अविरूद्धं विरूद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सादानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 406 ।।

अर्थः जो विरोधियों के बीच अविरोधी बन कर रहता है, दंडधारियों के बीच बिना दंड, शांति से रहता है, परिग्रह करने वालों में अपरिग्रही होकर रहता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण के गुण
चार सामनेरों की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार एक ब्राह्मणी ने अपने पति से कहा, "विहार जाकर चार वृद्ध भिक्षुओं को भोजन दान के लिए ले आओ।" उसे विहार में 1. संकिच्च 2. पंडित 3. सोपाक और 4. रेवत, ये चार सात वर्षीय श्रामणेर मिले। वह उन्हें लेकर आ गया। उसकी पत्नी बहुत नाराज हुई और बोली, "तुम्हें ये दूध पीते बच्चे ही मिले थे ? जाकर वृद्ध भिक्षुओं को लेकर आओ।" ऐसा कहकर उन श्रामणेरों को उपेक्षापूर्वक एक किनारे बैठा दिया।

थोड़ी देर बाद ब्राह्मण सारिपुत्त को लेकर आया। उन्होंने पूछा, "इन चार ब्राह्मणों को भोजन कराया ? " "नहीं।" यह देखकर कि ब्राह्मण ने सिर्फ चार लोगों के लिए भोजन की व्यवस्था की थी, वे अपना भिक्षा पात्र लेकर चले गए।

पत्नी ने ब्राह्मण को फिर एक वृद्ध भिक्षु लाने के लिए भेजा। इस बार वह महामोग्गलान को लेकर आया। उन्होंने भी पूरी स्थिति देखी, भोजन ग्रहण नहीं किया और भिक्षापात्र लेकर चले गए। पत्नी ने फिर से वृद्ध भिक्षु बुलाने के लिए भेजा।इधर श्रामनेरों को भूख लग रही थी। अतः शक्र ने एक वृद्ध भिक्षु का रूप धारण कर लिया। ब्राह्मण उसे ही भोजन के लिए ले आया। ब्राह्मणी उसे देखकर बहुत प्रसन्न हुई। वह वृद्ध इन चारों श्रामणेरों को सादर प्रणाम कर उनके पास भूमि पर बैठ गया। पति-पत्नी को इस पर बहुत गुस्सा आया और वे हाथ, कंधा आदि पकड़ कर उसे उठाने लगे पर वह टस से मस नहीं हुआ। ब्राह्मण-ब्राह्मणी डर गए। इन्द्र ने अपना रूप दिखाया। तब उन्होंने उन पाँचों को भोजन कराया।

भोजन के बाद चारों श्रामनेर घर की छत से बाहर निकल कर चले गए और बूढ़ा भिक्षु सामान्य मार्ग से निकल गया।

श्रामणेर विहार पहुँचे। अन्य भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "भिक्षाकर्म कैसा रहा ? " तब उन श्रामनेरों ने अपनी आप-बीती सुनाई। उन तरुण भिक्षुओं ने उनसे पूछा, "जब वह ब्राह्मणी क्रुद्ध हो रही थी तब तुम लोगों को क्रोध नहीं हुआ ? " "नहीं।" उन भिक्षुओं को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ और वे शास्ता के पास जाकर बोले, "हमें लगता है कि ये भिक्षुगण असत्य बोल रहे हैं।"

शास्ता ने उन्हें समझाया, "क्षीणास्रव भिक्षु अपने विरोधियों पर भी विरोध प्रकट नहीं करते हैं।"

गाथा: यस्स रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पातितो।
सासपोरिव आरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 407।।

अर्थ: जिस साधक के चित्त से राग, द्वेष, अभिमान और डाह वैसे ही गिर पड़े हैं जैसे सूई की नोंक से सरसों के दाने, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सूई की नोंक के बराबर भी राग, द्वेष, अभिमान और डाह न रखें
महापंथक थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

महापंथक ने अपने भाई चूलपंथक के प्रव्रजित होने से पूर्व ही अर्हत्व प्राप्त कर लिया था। छोटा भाई जब तीन महीने में भी एक गाथा याद नहीं कर पाया तो महापंथक ने क्रुद्ध होकर उससे कहा, "तू प्रव्रज्या से भी गया और गृहस्थ जीवन से भी गया। तू भिक्षु बनने के योग्य है ही नहीं।" यह कहकर उसे विहार से निकाल दिया और विहार के दरवाजे बंद कर दिए ।

एक दिन भिक्षुओं में चर्चा चल पड़ी, "महापंथक अर्हत हैं । फिर उन्हें अपने भाई पर क्रोध क्यों आया ? क्या अर्हतों को भी क्रोध आता है ? "

उनकी बातों को सुनकर शाक्य मुनि ने स्पष्ट किया, "क्षीणास्रवों में राग आदि क्लेश नहीं होते। मेरे पुत्र महापंथक ने अपने भाई की भलाई के लिए ही यह किया था।"
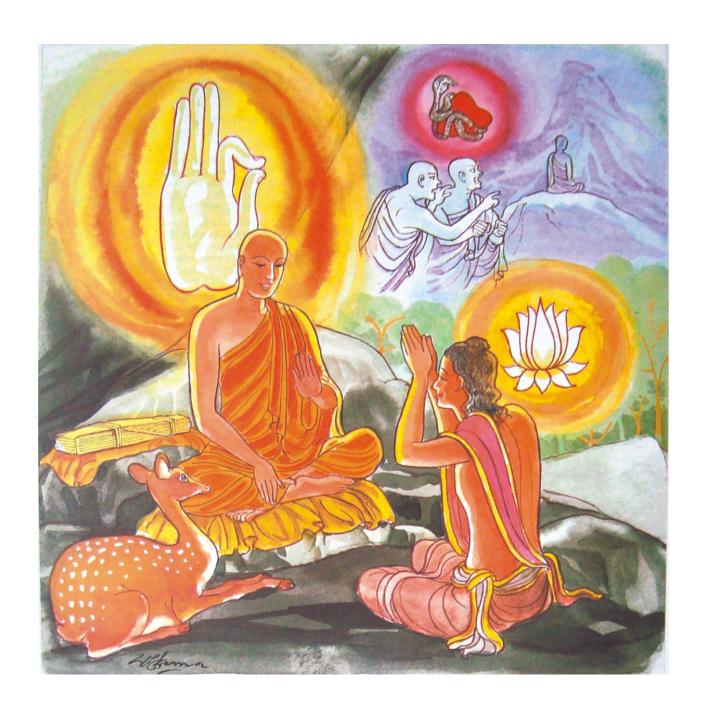
गाथा: अकक्कसं विञ्ञापनिं, गिरं सच्चमुदीरये।
याय नाभिसजे कञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 408।।

अर्थ: जो अकर्कश, विषय को स्पष्ट करने वाली सार्थक, सच्ची वाणी बोलता है, जिससे किसी को पीड़ा नहीं पहुँचती, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सच्ची व मधुर वाणी वाला ही ब्राह्मण है
पिलिन्दवत्स थेर की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

पिलिन्दवत्स थेर के सामने जो भी गृहस्थ या प्रव्रजित आते थे, वे "जा शूद्र ! आ शूद्र !" आदि का व्यवहार करते थे। कुछ भिक्षुओं को यह बुरा लगा और उन्होंने शाक्य मुनि को उनकी यह आदत बताई।

शास्ता ने उसे बुलाकर पूछा तो उसने इसे स्वीकार किया। तब तथागत ने उनके पूर्व जन्म का अवलोकन किया और भिक्षुओं को समझाया, "पिछले पाँच सौ जन्मों में पिलिन्द ब्राह्मण कुलों में जन्म लेता रहा है। अतः दूसरों को 'शूद्र' कहने की उसकी आदत पड़ गई है। यह उसके स्वभाव का अंग बन चुका है। वह किसी द्वेषभाव से 'शूद्र' नहीं कहता है। अतः उसकी बातों का बुरा मत मानो। अर्हत कभी भी किसी के प्रति कर्कश या दुःख देने वाली वाणी का व्यवहार नहीं करते हैं।"
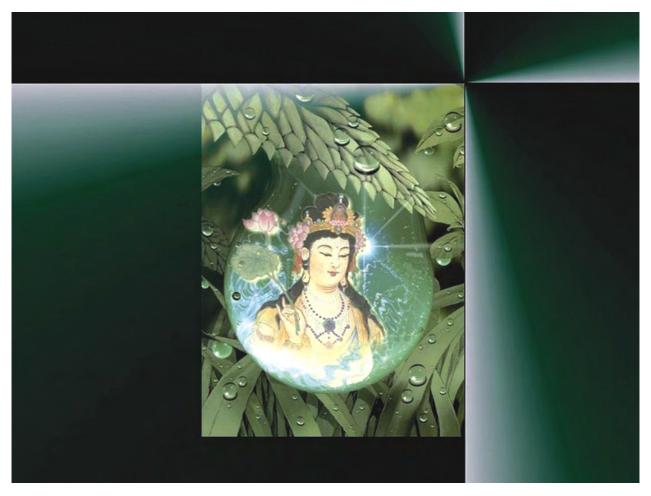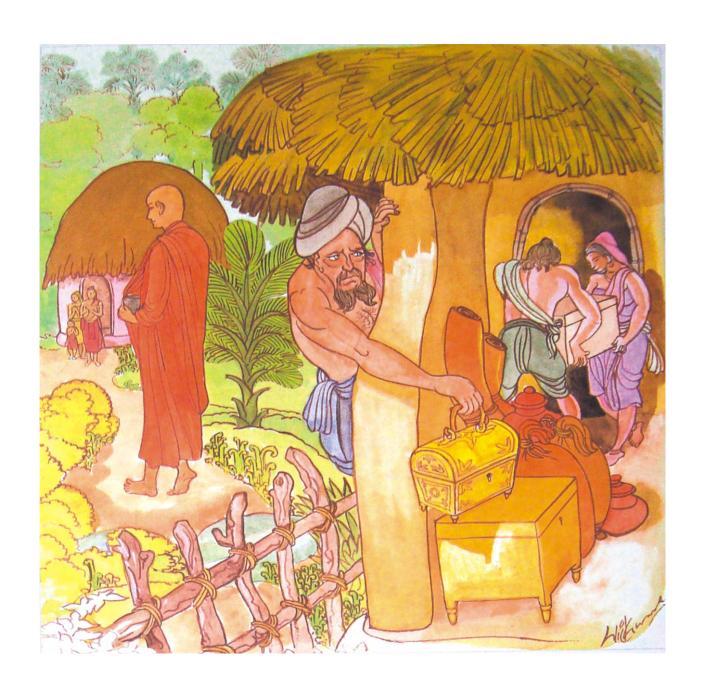
गाथा: योध दीघं व रस्सं वा, अणुं थूलं सुभासुभं।
लोके अदिन्नं नादियति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 409।।

अर्थ: जो इस लोक में लम्बी या छोटी, मोटी या महीन, सुन्दर या असुन्दर वस्तु बिना दिये नहीं लेता, अर्थात् उसकी चोरी नहीं करता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण का गुण : चोरी न करना
किसी स्थविर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती में एक ब्राह्मण ने अपना अंगवस्त्र धूप में रख दिया था। वह घर के दरवाजे पर बैठा था। हवा चली और वह वस्त्र उड़ गया तथा सड़क पर कहीं गिर गया। उधर से एक क्षीणास्त्रव भिक्षु भिक्षाटन के लिए जा रहा था। उसने इसे 'फटा पुराना कपड़ा' (पंसुकूल) समझकर उठा लिया। ब्राह्मण उसके पास दौड़ा हुआ आया और कहने लगा, "अरे सिरमुंडे ! मेरा दुपट्टा लेकर जा रहा है।" "मैंने तो इसे फटा-पुराना वस्त्र समझकर, जिसका कोई मालिक नहीं है, उठा लिया था। अगर आपका है तो आप वापस लीजिए," यह कहकर भिक्षु ने उसे वह वस्त्र लौटा दिया।

भिक्षु विहार चला गया। उसने यह बात अन्य भिक्षुओं को बताई। वे उसकी बात पर विश्वास करने के बजाय उसका मजाक उड़ाने लगे, "वस्त्र लम्बा था या छोटा ? मोटा था या रूखड़ा।" भिक्षु ने उन्हें समझाने की कोशिश की, "मित्रों ! वस्त्र लम्बा था या छोटा, मोटा था या रूखड़ा -इस पर मैंने ध्यान ही नहीं दिया क्योंकि उस वस्त्र में मेरी कोई आसक्ति नहीं थी। मैंने तो उसे मात्र फटा-पुराना समझकर उठाया था।"

भिक्षुगण ने उसकी बातों का विश्वास नहीं किया और शाक्य मुनि के पास जाकर अपनी शंका रख दी कि यह भिक्षु झूठ बोलता है कि वह अर्हत् है और उसे उस वस्त्र में आसक्ति नहीं है।

तब तथागत ने उन्हें समझाया, "भिक्षुगण ! यह भिक्षु ठीक ही कह रहा है। क्षीणास्त्रव भिक्षु दूसरों की संपत्ति हड़पने का कभी भी मन नहीं बनाते।"
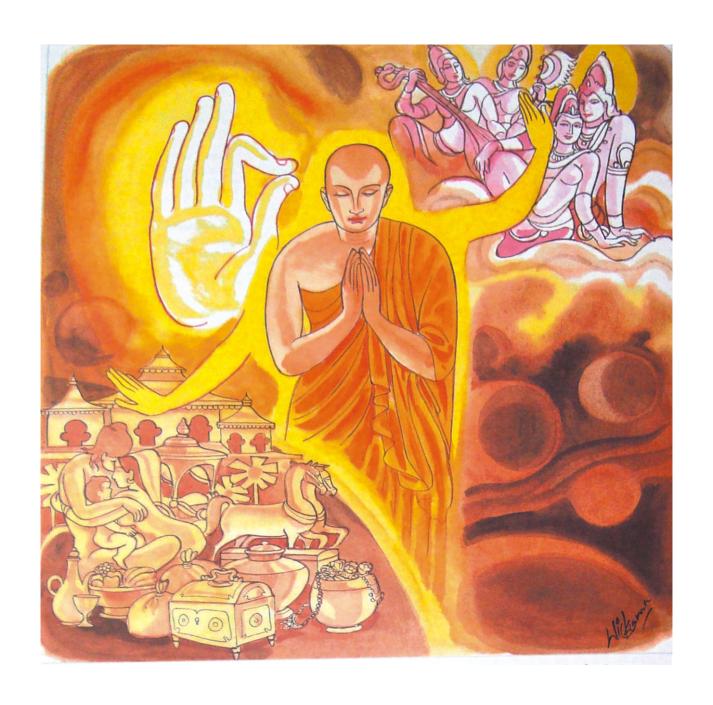
गाथा: आसा यस्स न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परम्हि च।
निरासासं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 410।।

अर्थ: जिसके मन में इस लोक अथवा परलोक के संबंध में कोई आशा-आकांक्षा नहीं रह गई है, जो सभी प्रकार की आशाओं-आकांक्षाओं और आसक्तियों से मुक्त हो चुका है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो भी आसक्तियों से मुक्त है, वही ब्राह्मण है
सारिपुत्त की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार सारिपुत्त भिक्षुओं के साथ देहात के एक विहार में गये और वर्षावास किया। प्रवारणा के बाद सारिपुत्त ने आवासिक भिक्षुओं को आदेश दिया, "उपासकों द्वारा लाया गया सब कुछ भेज देना।" ऐसा कहकर वे शाक्य मुनि से मिलने जेतवन की ओर प्रस्थान कर गए। कुछ भिक्षुओं ने इसका उल्टा अर्थ लगाया।

भिक्षुओं ने शास्ता को बताया, "लगता है स्थविर सारिपुत्त अभी भी चीवर आदि वस्तुओं में आसक्त हैं। उनके अन्दर अभी भी तृष्णा शेष है।" तथागत ने उन्हें समझाया, "सारिपुत्त ने चीवर आदि लाने को कहा ताकि मनुष्यों द्वारा किये गए कृत का उन्हें फल मिल सके और सामनेर भी चीवर से वंचित न हों। सारिपुत्त की इस लोक या परलोक में- कहीं भी कोई आशा या तृष्णा शेष नहीं रह गई है।"
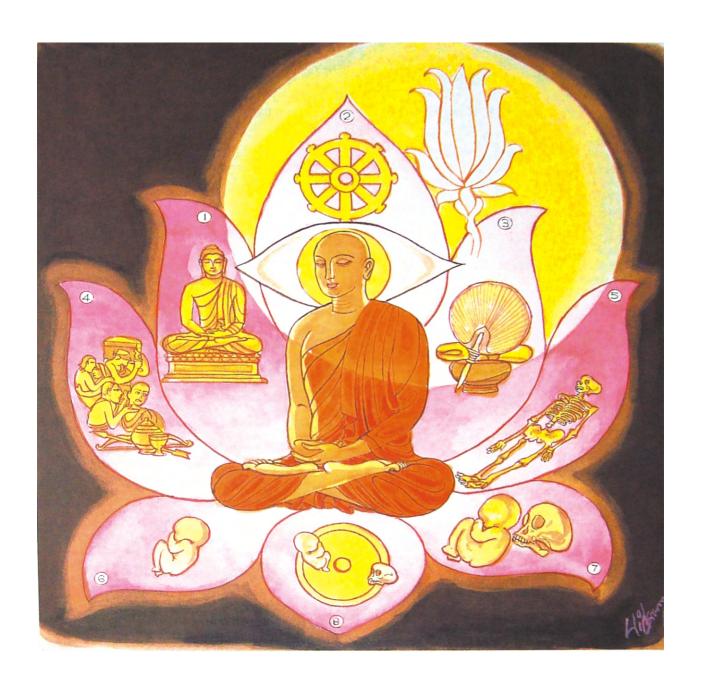
गाथा: यस्सालया न विज्जन्ति, अञ्ञाय अकथंकथी।
अमतोगधमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 411।।

अर्थ: जिसको (आलय) तृष्णा नहीं है, जो सब कुछ जानकर संदेह रहित हो गया है, जिसने अवगाहन करके (डुबकी लगाकर) निर्वाण प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

अनासक्त, नि:संशयी, निर्वाण प्राप्त ही ब्राह्मण है
महामोग्गलान थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार भिक्षुओं ने महामोग्गलान के विषय में भी वही बात कही जो उन्होंने थेर सारिपुत्त के लिए गाथा 410 में कही थी ।

तब शास्ता ने समझाया, "महामोग्गलान की किसी वस्तु में आसक्ति नहीं है। वह तृष्णा रहित है। वह किसी चीज में लिप्त नहीं है। वह संशय रहित, वीतराग हो गया है। उसने अपने परिश्रम से यह सब कुछ प्राप्त किया है।"

गाथा: योध पुञ्ञञ्च पापञ्च, उभो सङ्गमुपच्चगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 412।।

अर्थ: जो इस लोक में पुण्य और पाप दोनों के प्रति आसक्ति से परे चला गया है, जो शोकरहित, विमल और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

पाप-पुण्य से अनासक्त ही ब्राह्मण है
रेवत थेर की कथा

स्थान : पुब्बाराम

एक दिन भिक्षुओं ने शास्ता से चर्चा की, "भन्ते ! थेर रेवत को उपासकों से बहुत लाभ-सत्कार मिलता है। उन्हें ऋद्धि सिद्धियाँ भी प्राप्त हैं। वे उनका लाभ उठाते हैं जैसा उन्होंने एक बार जंगल में किया था जब शाक्य मुनि अपने भिक्षु संघ के साथ वहाँ पधारे थे। उन्होंने एक भवन का निर्माण किया था जिसमें भिक्षु संघ और शास्ता आराम से रुके थे।"

तथागत ने रेवत की प्रशंसा की और कहा, "भिक्षुओं ! मेरे पुत्र रेवत के न पुण्य हैं और न पाप। वह इन दोनों से ऊपर उठ गया है। वह ब्राह्मण बन गया है।"

गाथा: चन्दंव विमलं सुद्धं, विप्पसन्नमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 413।।

अर्थ: जो चन्द्रमा की तरह विमल, शुद्ध, निखरा हुआ और मलरहित है, और जिसकी भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण चन्द्रमा की तरह विमल होता है
चन्दाभ थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में चन्दाभ नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह पूर्व जन्म में कस्सप बुद्ध के चैत्य में चंदन लगाया करता था। अतः इस जन्म में उसकी नाभि से चंद्रमा समान रोशनी निकलती थी। पाखंडी ब्राह्मण उसको लेकर चलते थे और लोगों से पैसे इकट्ठा कर उनको लूटते थे।

एक दिन शाक्य मुनि जेतवन में विराजमान थे तथा संध्या वेला में धर्म देशना देने जा रहे थे। लोग उनकी धर्म सभा में आ रहे थे। पाखंडी ब्राह्मणों ने उन्हें रोकना चाहा ताकि वे चन्दाभ का चमत्कार दिखा सकें। पर वे उन्हें रोक नहीं पाये। दोनों समूहों में झगड़ा होने लगा कि शास्ता अधिक शक्तिशाली हैं या चन्दाभ। अंत में निर्णय हुआ कि विहार चलकर शक्ति परीक्षा कर इसे तय कर लिया जाए।

चन्दाभ शास्ता के सम्मुख पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही उसकी आभा समाप्त हो गई। देखने पर ऐसा लगने लगा जैसे कोयले की टोकरी पर कोई काला कौआ बैठा हो। उसे लगा जैसे तथागत आभा लुप्त करने का मंत्र जानते हैं। अत: वह शास्ता के पास गया और उनसे आग्रह करने लगा, "हे गौतम ! मुझे आभा समाप्त करने का मंत्र बताइये।" "इसके लिए तुम्हें प्रव्रजित होना होगा," शास्ता ने कहा।

चन्दाभ ने सोचा कि मंत्र सीखकर, पूरे जम्बूद्वीप घूम कर पैसे कमा सकता हूँ। अत: उसने तुरंत प्रव्रज्या ले ली और कुछ ही दिनों में अर्हत बन गया। अब मंत्र पूछना भूल गया। मंत्र की अब उसे जरूरत क्या थी ? उसे तो महामंत्र मिल गया था। ब्राह्मण लोग उसे वापस लेने आये तो उसने कह दिया, "अब मैं वापस नहीं आने वाला। मेरा आना-जाना समाप्त हो गया।"

भिक्षुओं में चर्चा चली कि चन्दाभ ने अभी-अभी प्रव्रज्या ली है। वह तुरंत अर्हत कैसे हो गया ? कहीं वह झूठ तो नहीं बोल रहा है ?

तथागत को पता चला तो उन्होंने कहा, "भिक्षुओं ! मेरा पुत्र चन्दाभ सच बोल रहा है। वह अब ठीक चन्द्रमा की भाँति हो गया है, पहले तो वह नाम मात्र का चन्दाभ था। अब उसकी तृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई है।"

गाथा: योमं पलिपथं दुग्गं, संसारं मोहमच्चगा।
तिण्णो पारगतो झायी, अनेजो अकथंकथी।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 414।।

अर्थ: जिसने इस दुर्गम संसार (जन्म-मरण) के चक्कर में डालने वाले मोह-स्वरूप उल्टे मार्ग को त्याग दिया, जो तीर्ण हो गया, जो पार कर गया, जो ध्यानी है, जो स्थिर है, जो संशय रहित है, जिसने उपादान रहित निर्वाण को प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो भवसागर पार कर गया वह ब्राह्मण है
सीवलि थेर की कथा

स्थान : कुण्डकोलिय

कोलिय पुत्री सुप्रवासा शास्ता की श्राविका-उपासिका थी। एक बार वह सात वर्षों तक अपने उदर में गर्भ धारण किए रही और फिर पुत्र जन्म के समय भी वह गर्भ सात दिनों तक योनि में रुका रहा। उसे बहुत कष्ट हुआ । जब उसे अपने दुःख से त्राण नहीं हो पा रहा था तो उसने सोचा, "बुद्ध तो करुणानिधान हैं। वे सबों का दुःख हर लेते हैं। मेरा दुःख समाप्त नहीं हो रहा है। अपने पति को उनके श्रीचरणों में भेजती हूँ।" यह सोचकर उसने अपने पति को बुद्ध के पास भेजा। पति ने शास्ता के पास जाकर प्रार्थना की और उनसे निवेदन किया, "कोलिय कन्या, मेरी पत्नी, गर्भ पीड़ा से व्यथित है, जैसे उसकी मृत्यु ही उसके पास आ गई है।" शास्ता ने पति को समझाया, "आयुष्मान ! जाओ, सब ठीक हो जाएगा। वह प्रसन्न होगी। उसे हृष्ट-पुष्ट पुत्र रत्न प्राप्त होगा।"

पति के वापस पहुँचने से पहले ही सुप्रवासा ने एक पुत्र रत्न को जन्म दे दिया था। शास्ता ने जो कुछ बताया था वह शत प्रतिशत सच निकला। सभी के हृदय में अपूर्व खुशी हुई। अतः शाक्य मुनि के सम्मान में सात दिनों तक उत्सव रखा गया। बालक का नाम 'सीवलि' अर्थात् शुभ रख दिया गया।

एक दिन सारिपुत्त सीवलि के घर गए। सीवलि ने प्रव्रजित होने की इच्छा जाहिर की। माँ ने उसे अनुमति दे दी। वह प्रव्रजित हो गया। प्रव्रज्या दिलाते समय सारिपुत्त ने उससे कहा, "तुम माँ के गर्भ में बहुत वर्षों तक रहे। तुम उसी पर ध्यान करो। तुम्हारी मुक्ति का रहस्य उसी में छिपा है।" सीवलि ने ध्यान साधना की। वह अर्हत् हो गया।

एक दिन धर्म सभा में चर्चा का विषय था, "सीवलि जैसे अर्हत्व प्राप्त भिक्षु को भी माँ की कोख में बहुत दिनों तक दुःख झेलना पड़ा। अगर उसके साथ ऐसा हुआ तो साधारण लोगों के साथ कैसा होता होगा ? "

शास्ता ने उन्हें उपदेश दिया, "हाँ भिक्षुओं ! मेरा शिष्य भीषण कष्ट से मुक्त होकर अब अर्हत्व प्राप्त कर सुखपूर्वक साधना कर रहा है।"
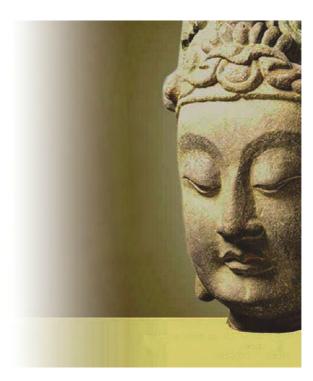
गाथा: योध कामे पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 415।।

अर्थ: जो काम भोगों को छोड़ बेघर हो प्रव्रजित हो गया है, जिसका काम-भव नष्ट हो गया है, जिसमें जन्म लेने की कामना क्षीण हो चुकी है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

काम भोगों से मुक्त ही ब्राह्मण है
सुन्दर समुद्र थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

श्रावस्ती के एक धनी सेठ का पुत्र सुन्दर समुद्र अपने माता-पिता की आज्ञा से प्रव्रजित होकर राजगृह जाकर ध्यान विपश्यना करने लगा। एक दिन श्रावस्ती में एक उत्सव हो रहा था। उसके माता-पिता अपने पुत्र को याद कर रोने लगे। तब उनके पास एक गणिका आई और उसने उनसे कहा, "अगर मैं तुम्हारे पुत्र को संघ से बाहर निकाल कर पुनः गृहस्थ बना दूँ तो मुझे पुरस्कार के रूप में क्या दोगे ? " "मुँह माँगा इनाम दिया जाएगा, तुम्हें मालामाल कर दिया जाएगा।" गणिका ने माता-पिता से भारी अग्रिम धनराशि वसूल ली और अपने लोगों के साथ राजगृह आकर रहने लगी।

राजगृह में उसने एक बहुमंजिला सुंदर मकान उसी मार्ग पर किराये पर ले लिया जिधर से थेर सुन्दर समुद्र भिक्षाटन के लिए आया-जाया करता था। पहले वह घर के बारह ही खड़ी होकर उन्हें भोजन दे दिया करती थी। फिर उसने कहना शुरू कर दिया, "भन्ते ! बैठकर यहीं खाइये।" दो-तीन दिनों के बाद यह कहकर अंदर बुला लिया कि बाहर बहुत धूल उड़ती है। फिर एक दिन उसने महल्ले के लड़कों को पैसे दिये कि जब भन्ते दरवाजे पर आवें तो वे खूब शोर करें। लड़कों ने वैसा ही किया। उसने भिक्षु से कहा, "भन्ते ! नीचे लड़के बहुत शोर करते हैं। ऊपर की मंजिल पर चलिए।" उसे साथ लेकर ऊपर चली गई, नीचे से दरवाजा बंद कर दिया।

ऊपर पहुँच कर उसने चालीस प्रकार के हाव-भाव और स्त्री लीला दिखाना प्रारंभ कर दिया और उससे कहा, "आप भी युवा हैं और मैं भी युवती हूँ। अभी जीवन का आनन्द ले लेते हैं। बाद में वृद्धावस्था में हम दोनों प्रव्रजित हो जायेंगे।" अब थेर को अपनी गलती का एहसास हुआ। उसने सोचा, "मैंने यहाँ आकर बहुत बड़ी गलती कर दी है।"

उस समय शास्ता गंधकुटी में थे। उन्होंने आनन्द को बुलाकर उस भिक्षु और युवती के बीच हो रहे घमासान संग्राम के विषय में बताया। उन्होंने यह भी कहा, "अंत में जीत भिक्षु की ही होगी।"
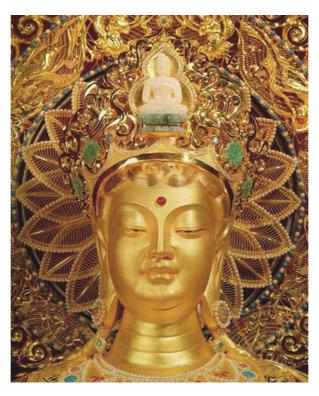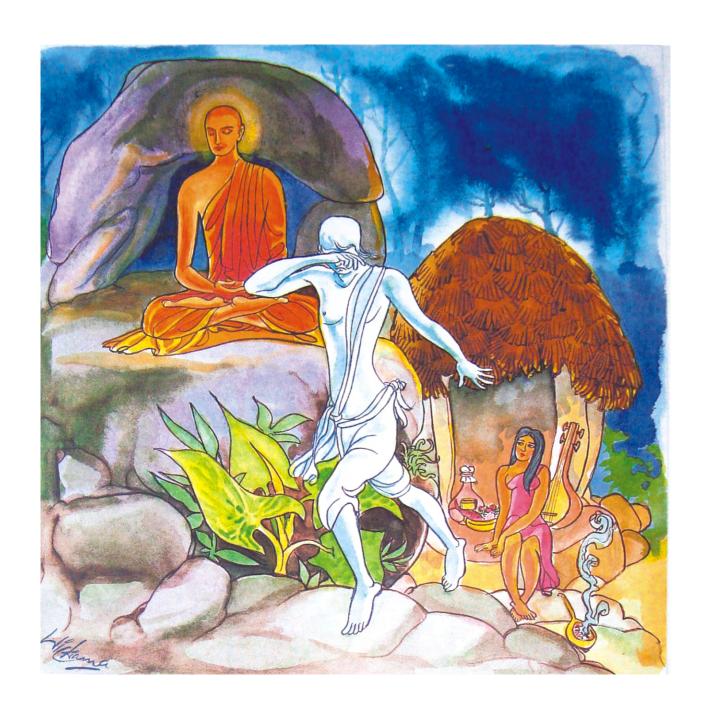
गाथा: योध तण्हं पहन्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
तण्हाभवपरिक्खीणं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 416।।

अर्थ: जो यहाँ इस लोक में तृष्णा को छोड़कर, घर-बार छोड़कर प्रव्रजित हो जाये, जिसकी भवतृष्णा पूरी तरह क्षीण हो गई हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

तृष्णामुक्त ही ब्राह्मण है
जटिल की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

जटिल का जन्म एक अविवाहित धनी लड़की की कोख से हुआ था। लोक लज्जा के भय से उसकी माँ ने जन्म लेते ही उसे नदी में बहा दिया। कुछ दूर पर किसी औरत ने उसे उठा लिया और उसे अपने बच्चे की तरह पाला। बाद में वह अध्ययन हेतु तक्षशिला गया और वहीं उसका विवाह भी हो गया। उसके तीन पुत्र भी हुए। वहाँ पति-पत्नी नया घर बना रहे थे तो घर के पिछवाड़े में जमीन की खुदाई करते समय बहुत सारा सोना मिल गया। बाद में बेटों को सम्पत्ति सौंपकर, राजा से आज्ञा लेकर, जटिल प्रव्रजित हो गया। कुछ ही दिनों में वह अर्हत भी हो गया।

एक बार शास्ता जटिल और अन्य भिक्षुओं के साथ जटिल के गाँव गये। जटिल के पुत्रों ने पन्द्रह दिनों तक भोजनदान दिया। कुछ समय बाद भिक्षुओं ने जटिल से पूछा कि उसे सोने, धन, पुत्र आदि में तृष्णा है या नहीं। उसने उत्तर दिया, "नहीं।" भिक्षुओं ने इसे असत्य मानकर शास्ता से कहा कि वह झूठ बोल रहा है। तब शास्ता ने बताया, "जटिल को अब किसी चीज की तृष्णा नहीं रह गई है।"

जोतिय नामक एक अति धनवान राजगृह में रहता था। उसने एक बहुत सुन्दर प्रासाद बना रखा था जिसकी चर्चा दूर-दूर तक थी। एक बार राजा बिंबिसार भी अपने पुत्र कुमार अजातशत्रु के साथ उसे देखने गया। उसी समय अजातशत्रु ने मन बना लिया, "जब गद्दी पर बैठूँगा तो इस प्रासाद को जरूर हथिया लूँगा।"

राजा को मारकर अजातशत्रु स्वयं गद्दी पर बैठा। उसने जोतिय के प्रासाद पर हमला किया पर हमला असफल रहा। वहाँ से अजातशत्रु वेणुवन गया जहाँ जोतिय धर्मकथा सुन रहा था। अजातशत्रु बोला, "अपने रक्षकों को वहाँ पर मुझसे लड़ने के लिए लगा रखा है और स्वयं यहाँ आकर धर्मकथा सुनने का स्वांग कर रहे हो।" जोतिय समझ गया कि राजा ने प्रासाद को जबरदस्ती हथियाने का प्रयत्न किया है।

जोतिय ने राजा को समझाया, "मेरी इच्छा के विरुद्ध मुझसे कुछ नहीं लिया जा सकता, मुझे ऐसा आशीर्वाद प्राप्त है।" उसने राजा से अपने हाथों की अँगुलियों से अँगूठियाँ निकालने के लिए कहा। बहुत यत्न करने पर भी राजा उन्हें नहीं निकाल पाया। तब जोतिय ने अपनी अंगुलियों से सारी अंगूठियाँ आसानी से निकाल राजा के सामने रख दीं।

इस घटना के बाद जोतिय ने सारी अंगूठियाँ राजा को दे दी और शास्ता से प्रार्थना करके प्रव्रजित हो गया। वह शीघ्र ही अर्हत् भी हो गया और जोतिय स्थविर के नाम से जाना गया। उसके अर्हत प्राप्ति के साथ ही उसकी सारी सम्पत्ति लुप्त हो गई और उसकी पत्नी उत्तर कुरू चली गई।

एक दिन भिक्षुओं ने जोतिय थेर से पूछा, "भन्ते ! क्या आपको उस प्रासाद, धन या स्त्री में कोई तृष्णा है ? " उसने कहा, "नहीं अब कोई तृष्णा नहीं है।" भिक्षुगण शास्ता के पास गये और बोले, "भन्ते ! हमें लगता है कि जोतिय झूठ बोल रहे हैं कि अर्हत हो गए हैं।" शास्ता ने उन्हें बोध कराया, "नहीं भिक्षुओं ! मेरे पुत्र में अब कोई तृष्णा नहीं रह गई है। वह अब जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो गया है।"
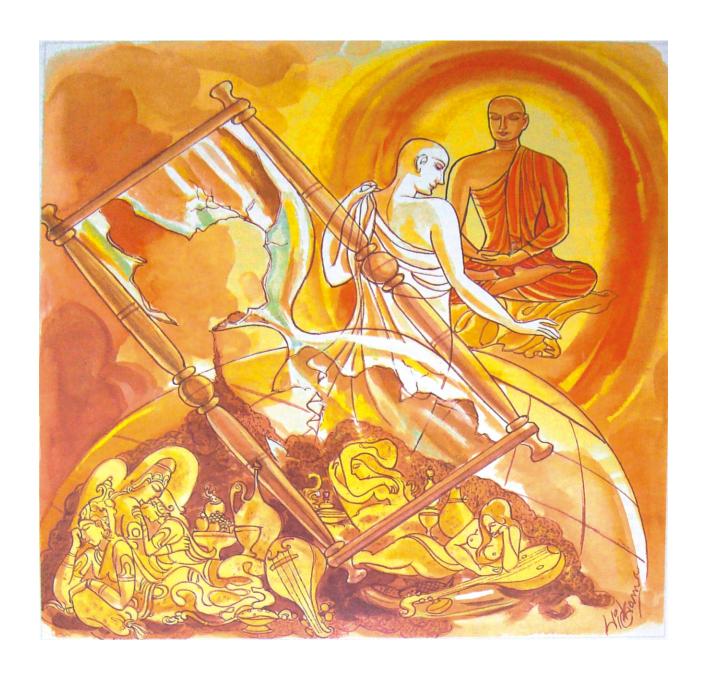
गाथा: हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा।
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 417।।

अर्थ: जिसने मानुषी भोगों को छोड़ दिया, दिव्य भोगों को भी छोड़ दिया, जो सभी भोगों के प्रति अनासक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

सभी भोगों के प्रति अनासक्त ही ब्राह्मण है
नट पुत्र की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

यह धर्म कथा और गाथा शाक्यमुनि ने एक नटपुत्र को सबोधित करके कही थी।

वह नटपुत्र तरह-तरह की नटक्रीड़ा दिखाता हुआ, एक स्थान से दूसरे स्थान विचरण कर रहा था। एक दिन उसने शास्ता से धर्मकथा सुनी और उस धर्मकथा से प्रभावित होकर घर-द्वार छोड़ दिया, प्रव्रज्या ले ली, सतत कठिन साधना की और अर्हत हो गया।

एक दिन वह भिक्षुओं के संग भिक्षाटन कर रहा था। उसके सामने एक नटमंडली खेल दिखा रही थी। उसे देखकर भिक्षुओं ने नटस्थविर से पूछा, "भन्ते ! यह नट भी उन्हीं खेलों का प्रदर्शन कर रहा है जो पहले तुम किया करते थे। क्या तुम्हारे मन में इन खेलों को एक बार फिर दिखाने की इच्छा है या वह चाह खतम हो चुकी है ? " उसने कहा, "मेरी अब कोई इच्छा नहीं है। मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है।"
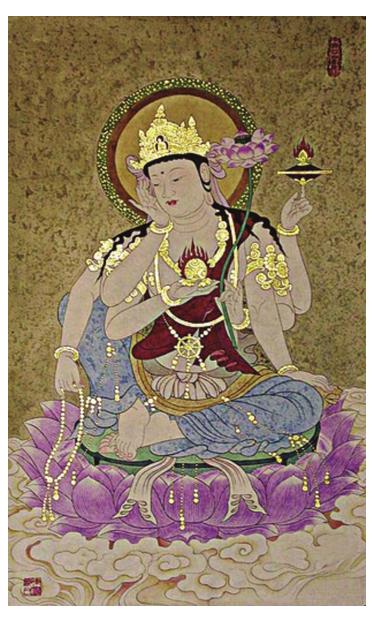
गाथा: हित्वा रतिञ्च अरतिञ्च, सीतिभूतं निरूपधिं।
सब्बलोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 418।।

अर्थ: जिसने पंचकामरूपिणी रति और अरण्यवास की उत्कंठास्वरूप अरति को छोड़ दिया, जो शांत और क्लेश रहित हो गया, जो सारे लोकों को जीत कर वीर बना है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

रति, अरति से ऊपर उठा, शांत और क्लेशरहित व्यक्ति ही ब्राह्मण है
नट पुत्र की कथा

उसकी बातें सुनकर भिक्षुओं को उस पर विश्वास नहीं हुआ। अतः वे शाक्य मुनि के पास गए और उनसे कहा कि यह भिक्षु सच नहीं बोल रहा है। तथागत ने उनकी सारी बातें सुनीं और उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! मेरा यह शिष्य अब सभी योगों (क्रीड़ा आदि कर्मों के कौशल) से ऊपर उठ चुका है।"
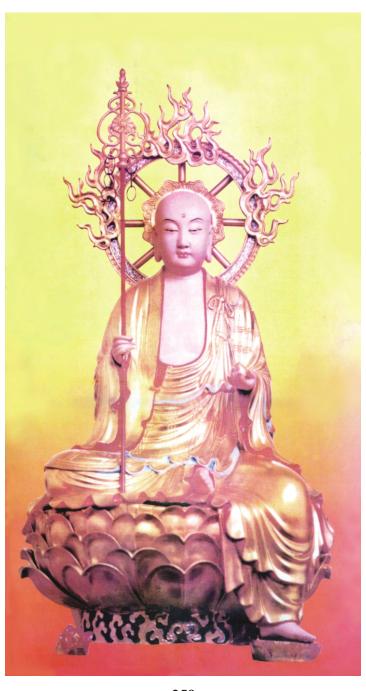
गाथा: चुतिं यो वेदि सत्तानं, उपपत्तिञ्च सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 419।।

अर्थ: जो प्राणियों की मृत्यु और उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है, जो आसक्ति-रहित सुगति (सुन्दर गति) प्राप्त बुद्ध (ज्ञ ानी) है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

प्राणियों के मृत्यु-उत्पत्ति का अनासक्त जानकार ब्राह्मण है
वंगीस थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

राजगृह में वंगीस नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसने एक विशेष सिद्धि प्राप्त कर रखी थी। वह अंगुलियों की नखों से मनुष्यों की खोपड़ी खटखटा कर बता देता था कि वह मनुष्य नरक में उत्पन्न हुआ है, मनुष्य लोक में उत्पन्न हुआ है, देव लोक में उत्पन्न हुआ है या वह प्रेत बना है आदि। इसे देखकर कुछ चालाक ब्राह्मणों ने विचार किया, "वंगीस का व्यवहार कर क्यों न कुछ पैसा कमाया जाए ? " यह विचार कर उन्होंने उसे लाल वस्त्र पहनाया और गाँव-गाँव साथ घूमकर प्रचार करने लगे, "ब्राह्मण वंगीस मृत लोगों की खोपड़ी बजाकर उनका पुनर्जन्मस्थान बता सकते हैं। आप लोग अपने सगे सम्बन्धियों की उत्पत्ति स्थान इनसे पूछ लें।" यह सुनकर गाँव वाले आने लगे और पैसे देकर अपने मृतक रिश्तेदारों का उत्पत्ति स्थान पूछने लगे। उनकी दुकान चल पड़ी।

कुछ दिनों बाद ब्राह्मणों ने श्रावस्ती में भी पैसा कमाने का विचार किया। वे श्रावस्ती पहुँचे और जेतवन के पास ही वासस्थान बनाकर रहने लगे। वे सुबह-सुबह धर्मकथा सुनने जाने वाले श्रद्धालुओं से कहने लगे, "हमारे वंगीस जैसा कोई भविष्यवक्ता नहीं है। यह मृत लोगों के कपाल को ठोककर उनकी उत्पत्ति स्थान बता देता है। आप यहाँ आइए और अपने सम्बन्धियों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए कि उनकी उत्पत्ति कहाँ हुई है।" शास्ता के भक्त कहते, "हमारे शास्ता के सामने यह वंगीस क्या चीज है ? " इस प्रकार दोनों पक्षों में वाद-विवाद बढ़ता ही गया। अंत में उभय पक्षों ने विचार किया कि आमने-सामने ही इस बात की परीक्षा ले ली जाए कि कौन श्रेष्ठ है। ऐसा विचार कर वे वंगीस को साथ ले विहार की ओर चले।
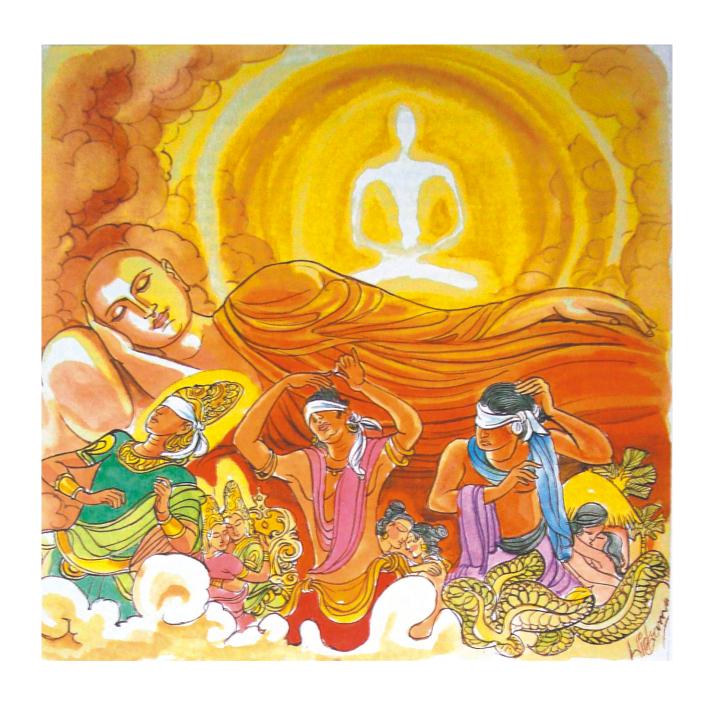
गाथा: यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गन्धब्बमानुसा।
खीणासवं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।।420।।

अर्थ: जिसकी गति को न देवता जानते हैं, न गन्धर्व और न मनुष्य, जो क्षीण-आस्त्रव है, जो अर्हत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मणों की गति कोई नहीं जान सकता
वंगीस थेर की कथा

वंगीस के आने से पहले ही शास्ता ने 1. नरक 2.पशुयोनि 3.मनुष्य लोक तथा 4.देवलोक- इन चार स्थानों में लोगों के चार शिर:कपाल और एक क्षीणास्रव का कपाल मंगवाकर, वंगीस से पूछा, "वंगीस ! इन चारों कपालों की उत्पत्ति स्थान बताओ।" वंगीस ने हर कपाल का सही उत्तर दिया और तथागत ने इस पर उसे साधुवाद दिया। तब शास्ता ने पाँचवाँ कपाल दिखाते हुए पूछा, "यह किसका है ? " उसने इसे बहुत खटखटाया पर इसका उत्पत्ति स्थान नहीं बता पाया।

बुद्ध ने पूछा, "वंगीस ! नहीं जानते हो ? " "नहीं जानता हूँ।" "मैं जानता हूँ।" "तो वह मंत्र कृपया मुझे भी सिखाइए।" "प्रव्रज्या लेनी होगी।" तब वंगीस के मन में विचार आया, "अगर मैं यह मंत्र विधि जान लूँगा तो पूरे जम्बूद्वीप में मैं सर्वश्रेष्ठ भविष्यवक्ता हो जाऊँगा।" यह सोचकर अपने ब्राह्मण मित्रों से कहा, "आप लोग कुछ समय यहीं रहें। मैं प्रव्रजित होऊँगा।"

वह प्रव्रजित हुआ। साधना करने लगा। उसके ब्राह्मण मित्र आकर उससे पूछते कि मंत्रविधि प्राप्त हुई या नहीं तो वह उनसे कहता, "हो रही है। कुछ दिन और प्रतीक्षा करो।" इस प्रकार साधना करते-करते वह अर्हत् हो गया। अब उसके साथी उससे वापस चलने के लिए कहते तो वह स्पष्ट उत्तर दे देता कि अब चलना संभव नहीं है। भिक्षुओं ने भी सुना। उन्हें उसके कथन में असत्यता लगी। अत: उन्होंने शास्ता से पूछा। शास्ता ने उन्हें समझाया, "भिक्षुओं ! मेरे शिष्य वंगीस पर संदेह न करो। मेरे इस शिष्य ने जन्म-मरण का रहस्य जान लिया है।"

गाथा: यस्स पुरे च पच्छा च, मज्झे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 421।।

अर्थ: जिसकी अतीत, वर्तमान या भविष्य काल में कहीं कुछ आसक्ति नहीं है, जो अकिंचन और परिग्रह रहित है, उसे ब्राह्मण कहता हूँ।

जो कालातीत है वही ब्राह्मण है
धर्मदिन्ना थेरी की कथा

स्थान : वेणुवन, राजगृह

जब धर्मदिन्ना थेरी गृहस्थ आश्रम में थी तब एक दिन बुद्ध से धर्म कथा सुन उसका पति विशाख उससे कहने लगा, "अब तुम इस धन सम्पत्ति को लेकर घर चली जाओ। मैं प्रव्रज्या लेने जा रहा हूँ।" "आपके थूके हुए को कौन स्वीकार करना चाहेगा ? अतः मुझे भी प्रव्रजित करा दें।" पति ने उसे बहुत सम्मान से प्रव्रजित करा दिया। वह "धर्मदिन्ना थेरी" के नाम से प्रसिद्ध हुई।

वह संघ से अनुमति लेकर छोटे गाँव में धर्मसाधना करने चली गई और शीघ्र ही अर्हत हो गई। उसने सोचा "मेरे अर्हत्व प्राप्ति से मेरे सम्बन्धियों का भी भला हो।" यह सोचकर वह राजगृह आ गई। उपासक (विशाख) ने उसका आगमन सुना तो 'किस प्रयोजन से आई होगी' यह जानने के लिए उसके पास जाकर, उसे प्रणाम कर बैठे हुए विचार किया कि इससे यह प्रश्न सीधा पूछना अनुचित होगा, "क्या धर्मसाधना में अनुत्सुक हो गई, आर्ये ! " अतः उसने चूल वेदल्ल में आए प्रश्न पूछे ताकि उसकी मनोदशा की जानकारी मिल सके। प्रश्न और उत्तर थे :

"सत्काय क्या है ? "

"रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान उपादान स्कन्ध हैं; शास्ता ने इन्हें सत्काय कहा है।" इसके बाद उसने सत्काय दृष्टि पर प्रश्न किया। धर्मदिन्ना ने इसका भी सही उत्तर दे दिया। "अष्टांगिक मार्ग संस्कृत है या असंस्कृत ? " "संस्कृत है, विशाख।" मार्गों के बारे में पूछने के बाद विशाख ने अंत में निर्वाण के बाद की स्थिति के विषय में प्रश्न पूछना प्रारंभ किया तो थेरी ने उसे रोक दिया और बोली, "आयुष्मान ! अब तुम प्रश्न का अतिक्रमण कर रहे हो। इससे आगे सुनना चाहते हो तो शास्ता से आग्रह करो।"

यह सुन विशाख ने थेरी को प्रणाम किया और शास्ता को सारी बात बताई। शास्ता ने थेरी से सहमति जताते हुए कहा, "थेरी ने जो कहा, वह ठीक कहा। मैं भी होता तो प्रश्नों का उत्तर इसी प्रकार देता।"

गाथा: उसभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं न्हातकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 422।।

अर्थ: जो ऋषभ (श्रेष्ठ) है, जो प्रवर (अग्र) है, जो वीर है, जो महर्षि है, जो विजेता है, जो स्थिर है, जो स्नातक है, जो बुद्ध (ज्ञानी) है उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जो सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी है वही ब्राह्मण है
अंगुलिमाल थेर की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार राजा प्रसेनजित तथा रानी मल्लिका ने बुद्ध और भिक्षुसंघ को एक भव्य भोजनदान पर आमंत्रित किया। हाथियों को भिक्षुओं के पीछे चंवर पकड़कर खड़ा किया गया । इनमें एक उदंड, अप्रशिक्षित हाथी भी था। उसे थेर अंगुलिमाल के पीछे चंवर देकर छाया करने के लिए खड़ा किया गया । उस हाथी को जैसे ही अंगुलिमाल के पास लाया गया वह अन्य हाथियों की तरह सेवा करता रहा।

भोजनदान समाप्त हुआ। भिक्षुओं ने थेर अंगुलिमाल से पूछा, "जब हाथी पीछे खड़ा था तो आपको भय लग रहा था या नहीं ? " "आयुष्मानों ! मुझे कोई भय नहीं लगा।" परन्तु भिक्षुओं को उसकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। उन्होंने अपने मन की शंका तथागत के सामने रखी। शास्ता ने बताया, "मेरा शिष्य क्षीणास्रव है। वह डरता नहीं। ऋषियों के बीच ज्येष्ठ ऋषभ (साँड़) है।"
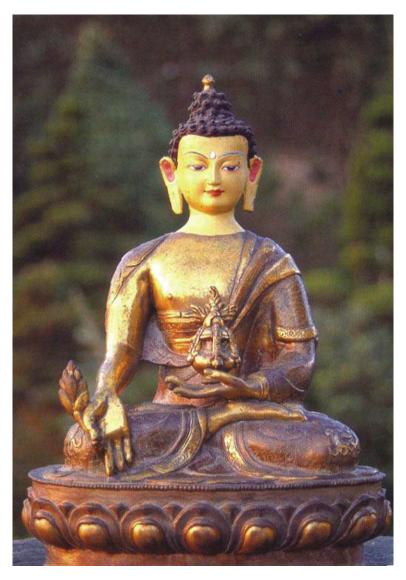
गाथा: पुब्बेनिवासं यो वेदि, सग्गापायञ्च पस्सति,
अथो जातिक्खयं पत्तो, अभिञ्ञावोसितो मुनि।
सब्बवोसितवोसानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।। 423।।

अर्थ: जो अपने पूर्व- निवास को जानता है, जो स्वर्ग और नरक को देख लेता है, जिसका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है, जो अभिज्ञा (विशिष्ट ज्ञान) में परायण है और जिसने जो कुछ करना था वह सब पूरा कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

जिसका पुनर्जन्म समाप्त हो गया है वही ब्राह्मण है
देवहित ब्राह्मण की कथा

स्थान : जेतवन, श्रावस्ती

एक बार जेतवन में तथागत को वात रोग हो गया। उन्होंने उपवान स्थविर को देवहित ब्राह्मण के यहाँ से गर्म जल लाने के लिए भेजा। ब्राह्मण ने इसे 'शास्ता की सेवा का स्वर्णिम अवसर' माना और अपने नौकर के साथ गर्म जल के साथ-साथ सीरा (राब) भी भेज दिया। गर्म जल से स्नान कर और गर्म जल में सीरा का घोल पीने से उनका वात रोग ठीक हो गया।

ब्राह्मण ने शास्ता से प्रश्न किए :

(1) दान किसे देना चाहिए ?
(2) कहाँ दिया हुआ दान अधिक फलप्रद होता है ?
(3) कैसे यजमान को कैसे दिया हुआ दान दाता को फल देता है ?

शास्ता ने इन प्रश्नों के उत्तर में ब्राह्मण के गुण बताये और समझाया कि कैसे ब्राह्मण को दिया गया दान महाफलवान होता है।

DHAMMAPADA

BRAHMANA VAGGA

“Wherever the Buddha's teachings have flourished,
either in cities or countrysides,
people would gain inconceivable benefits.
The land and pepole would be enveloped in peace.
The sun and moon will shine clear and bright.
Wind and rain would appear accordingly,
and there will be no disasters.
Nations would be prosperous
and there would be no use for soldiers or weapons.
People would abide by morality and accord with laws.
They would be courteous and humble,
and everyone would be content without injustices.
There would be no thefts or violence.
The strong would not dominate the weak
and everyone would get their fair share.”

※ THE INFINITE LIFE SUTRA OF ADORNMENT, PURITY, EQUALITY AND ENLIGHTENMENT OF THE MAHAYANA SCHOOL ※

DEDICATION OF MERIT

May the merit and virtue
accrued from this work
adorn Amitabha Buddha's Pure Land,
repay the four great kindnesses above,
and relieve the suffering of
those on the three paths below.

May those who see or hear of these efforts
generate Bodhi-mind,
spend their lives devoted to the Buddha Dharma,
and finally be reborn together in
the Land of Ultimate Bliss.
Homage to Amita Buddha!

NAMO AMITABHA

南無阿彌陀佛

《印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第四冊：第廿二品 至 第廿六品》

財團法人佛陀教育基金會 印贈

台北市杭州南路一段五十五號十一樓

Printed and donated for free distribution by

The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation

11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.

Tel: 886-2-23951198 , Fax: 886-2-23913415

Email: overseas@budaedu.org

Website:http://www.budaedu.org

Printed in Taiwan

3,000 copies; March 2010

IN074 - 8352

As this is a Dhamma text,
we request that it be treated with respect.
If you are finished with it,
please pass it on to others or
offer it to a monastery, school or public library.
Thanks for your co-operation.
Namo Amitabha!

《 印度PALI及HINDI文：法句經及其故事 第四冊：第廿二品 至 第廿六品 》
財團法人佛陀教育基金會 印贈
台北市杭州南路一段五十五號十一樓
Printed and donated for free distribution by
The Corporate Body of the Buddha Educational Foundation
11F., 55 Hang Chow South Road Sec 1, Taipei, Taiwan, R.O.C.
Tel:886-2-23951198,Fax:886-2-23913415
Email:overseas@budaedu.org
Website: http://www.budaedu.org
This book is for free distribution, it is not for sale.
यह पुस्तिका विनामूल्य वितरण के लिए है बिक्री के लिए नही ।
Printed in Taiwan
IN074